

ISSN 2277-5587  
Impact Factor 3.725  
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

## शोध श्री

Volume-29 Issue - 4 October-December 2018 RNI No. RAJHIN/2011/40531



CHIEF EDITOR  
**Virendra Sharma**

EDITOR  
**Dr. Ravindra Tailor**

[shodhshree@gmail.com](mailto:shodhshree@gmail.com)  
[www.shodhshree.com](http://www.shodhshree.com)

Shodh Shree

Issue - 4

Volume-29

October-December 2018

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

**Virendra Sharma**  
**Chief Editor**  
Government Girls P.G. College,  
Ajmer

**Dr. Ravindra Tailor**  
**Editor**  
Shodh Shree,  
Jaipur

## Editorial Board

**Prof. H.S. Sharma (Retd.)**  
University Of Rajasthan, **Jaipur**

**Prof. T.K. Mathur (Retd.)**  
M.D.S. University, **Ajmer**

**Prof. Ravindra Kumar Sharma**  
Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

**Sarah Eloy**  
Museum The House of Alijn, **Belgium**

**Prof. B.P. Saraswat**  
Dean of Commerce, M.D.S. University, **Ajmer**

**Prof. Pushpa Sharma**  
Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

**Dr. Manorama Upadhayay**  
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

**Dr. Rajesh Kumar**  
Director (Journal, Publication & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

**Dr. Pankaj Gupta**  
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

**Dr. Rajendra Singh**  
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

**Dr. Avdhesh Kumar Sharma**  
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

## Advisory Board

**Prof. S.N. Tailor (Retd.)**  
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

**Prof. S.P. Vyas**  
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

**Dr. Kate Boehme**  
University of Leicester, **United Kingdom**

**Dr. Mahesh Narayan**  
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**



# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

## Contents

Volume-29

Issue-4

October-December 2018

1. आदिवासी लोकगीतों में लोक संस्कृति  
डॉ. राजेंद्र सोमा घोडे, पुणे (महाराष्ट्र) 1-5
2. क्या अद्भुत नाथ का जीता, कीर्ति स्तम्भ (कुंभा) का मुख्य स्थपति था?  
डॉ. अम्बिका ढाका, बीकानेर 6-10
3. भारतीय प्रशासनिक और भारतीय पुलिस सेवाओं के निर्माण में सरदार पटेल की भूमिका  
बबली राम बैरवा, जोधपुर 11-15
4. शिक्षा व्यवस्था में जातिगत भेदभाव और दलित कहानी  
डॉ. नितीन गायकवाड़, पुणे (महाराष्ट्र) 16-21
5. भारत में संसदीय शासन-व्यवस्था की अवधारणात्मक : एक मूल्यांकन  
कमला सेसमा, जोधपुर 22-32
6. पाली जिले में मेहन्दी उद्योग की भूमिका  
इन्द्रा बंसल एवं डॉ. नवनीता सिंह, जोधपुर 33-36
7. पश्चिमी राजस्थान का नाकोड़ा जैन तीर्थ स्थल  
डॉ. सुरेश कुमार, जोधपुर 37-39
8. भक्तिकालीन बाजारवाद और भक्ति  
मनीष पटेल, दिल्ली 40-43
9. बैगा जनजाति में जादू टोना एवं टोटके  
कृष्ण कुमार तिवारी, लाडनूं 44-47
10. समकालीन राजस्थानी साहित्य में व्यंग्य की भूमिका  
मंदाकिनी शेखावत, जयपुर 48-51
11. भारत की 'साझा संस्कृति' और हिन्दी उपन्यास  
आलोक तिवारी, दिल्ली 52-55
12. मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना में माणिक्यलाल वर्मा का योगदान  
रोशन गहलोत, जोधपुर 56-58
13. बाल श्रम : समस्या व समाधान  
डॉ. मनीष जोशी, नागौर 59-61
14. पश्चिमी राजस्थान में काष्ठ उद्योग : दशा एवं दिशा (20 वीं सदी के पूर्वार्द्ध के संदर्भ में)  
डॉ. पुष्पेन्द्र सिंह, जोधपुर 62-68

15. डॉ. उषा यादव के उपन्यासों में वर्णित सामाजिक सरोकार योगेश शर्मा, जोधपुर	69-72
16. 'कथादेश' पत्रिका की कहानियों में वर्णित शोषण के विविध रूप जयश्री दाधीच, जोधपुर	73-75
17. सामाजिक परिप्रेक्ष्यता में अस्पृश्यता की अवधारणा विजेता, जोधपुर	76-79
18. <b>Ecotourism</b> Dr. Meena Rao, Jodhpur	80-84
19. <b>Purdah : References in Literature</b> Dr. Shobha Singh, Kishangarh	85-87
20. <b>Advertising is a Fruitful Investment</b> Bheeni Kashyap, Jodhpur	88-92
21. <b>Concept of New Historicism: A Study</b> Dr. Vivek, Jodhpur	93-95
22. <b>Assessment of Socio-economic and Environmental Impact on Watershed Management Programmes (A case study of Kharli Watershed "Moral Basin" using RS &amp; GIS)</b> Dr. Sunit Meel, Sumerpur & Dr. Dharmveer Janu, Bhopalgarh	96-100
23. <b>A study on Bihar Famine crisis in late 19<sup>th</sup> Century: Its Causes, Extent &amp; Nature</b> Shailendra Kumar, New Delhi	101-106

# आदिवासी लोकगीतों में लोक संस्कृति



www.shodhshree.com

डॉ. राजेंद्र सोमा घोडे

सहायक प्राध्यापक, सावित्री बाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

## शोध सारांश

आदिवासियों के जीवन में लोकगीतों का विशेष स्थान है। लोकगीत, लोकनृत्य के बीना उनका जीवन अधूरा है। आदिवासी समुदाय ज्यादा शिक्षित न होने के कारण उनके लोकगीत आज भी मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होते आ रहे हैं। इनके लोकगीत जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंग या क्षण को लेकर होते हैं। यह लोकगीत आदिवासी जनजातियों के अलग-अलग बोलियों में होने के कारण उसमें अलग-अलग जीवन दर्शन हमें दिखाई देता है। उनके लोकगीतों के पीछे अनेक परंपराएँ रीति-रिवाज होते हैं अन्य समाज चाहे उसे अंधश्रद्धा कहे लेकिन उनके लिए तो वह श्रद्धा है। इनके लोकगीत व्यक्ति द्वारा निर्मित होने के बावजूद भी समुह भावनाओं की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में सक्षम होते हैं। किसी भी देश के समाज व संस्कृति को जानने के लिए लोकगीत महत्वपूर्ण ज्ञान-स्रोत है। इन लोकगीतों के द्वारा आदिवासी संस्कृति का परिचय हमें होता है।

**संकेताक्षर :** आदिवासी, लोकगीत, अस्तित्व, अनुभूति, संस्कृति, स्त्री, लोक नृत्य, प्रकृति, शिक्षा, श्रद्धा, आदि।

देश का आदिवासी समाज आज भी आदिम अवस्था में अपना जीवन-यापन कर रहा है। जहाँ तक सभ्यता तो क्या, अपने आप को सभ्य कहने वाला समाज भी अभी तक नहीं पहुँचा है। जहाँ अंधेरी गुफाएँ इनके घर हैं तो बड़े वृक्षों की जड़े बाहर आने के रास्ते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले इन जनजातीय लोगों की भाषा, सांस्कृतिक परिवेश, रीति-रिवाज आदि पद्धतियों में व्यापक भिन्नता है। ये जनजातियाँ अपेक्षाकृत दुर्गम और पर्वतीय क्षेत्रों में रहती हैं तथा सदियों से नगण्य साधनों के बीच जीवन-यापन करती हैं। किसी समुदाय में प्रचलित रीति-रिवाज और उत्सव उसकी जीवनशैली को प्रतिबिंबित करते हैं। लोकगीत, लोकनृत्य तथा संगीत उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। आदिवासी समुदायों के पेशे अलग-अलग प्रदेश में अलग-अलग है। आदिवासी पुरुष घुटने तक धोती, लंगोटी और कमीज पहनते हैं। सफेद रंग का शर्ट और कंधे पर अंगोछा रखते हैं। स्त्रियाँ हाथों में चूड़ियाँ, गले में हमेल जो सिक्कों के आभूषण की बनी होती है। अंगूठी, कान में बुंदा आदि आभूषण पहनती है। स्त्रियों को गुदने, गुदवाने का बहुत शौक होता है। वे लोग दुनिया के तमाम झंझटों से मुक्त होकर मस्ती-भरा जीवन जीना अधिक पसंद करते हैं। वे लोग गीत, संगीत, लोकनृत्य के काफी शौकीन होते हैं। वादन के रूप में ढोलक, ढपली, मादरी, मंजीरा, बासरी आदि वाद्य बजाते हैं। विवाह और अन्य त्यौहारों में आदिवासी लोग सामूहिक नृत्य करके आनंद लेते हैं। उनके कठिन और कष्टमय जीवन को नृत्य और गीत सरस बनाते हैं।

आदिवासी अंचल में शादी-ब्याह या धार्मिक उत्सव के समय ढोल तथा डफली की ताल पर आदिवासी लोग नृत्य करते हैं। नृत्य के लिए आदिवासी लोगों के कुछ दिन निश्चित होते हैं। जैसे-धार्मिक उत्सव, शादी-ब्याह, फसल के मौसम का प्रारंभ या कोई आनंद का क्षण या दिन आदि। इसी तरह लोकगीत या लोकनृत्य विविध प्रसंगों में प्रकट होते हैं। इनके माध्यम से विविध त्यौहारों, पर्वों की जानकारी एवं सामाजिक रिश्ते-नातों का वर्णन पाया जाता है। इसके कारण आदिवासी लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान और रीति-रिवाज का वास्तविक स्वरूप देखने को मिलता है।

## जन्म गीत

आदिवासी जनजातियों में भी बच्चों का जन्म होने पर बधाई मनाई जाती हैं। बधाई मनाते समय पालना गाने की प्रथा भी इस जनजातियों में दिखाई देती हैं। श्रीकृष्ण का पालना गाया जाता है। इसमें सोलह दिनों का वर्णन किया जाता है। इसका बहुत अच्छी तरह से वर्णन 'ठकर' जनजातियों में दिखाई देता है। जैसे-

“पहिल्या दिवशी जन्मले बाल  
कलस सोन्याचा देतोय डहालक  
पडला उजेड तिन्हीया ताल  
दिपली नेत्र दोन्हीया डोल।”<sup>1</sup>

अनुवाद

पहले दिन जन्मा बच्चा  
कलस सोने का देता है डहालक  
पड़ गया प्रकाश तीनों ओर  
बालक को देखकर नेत्र तृप्त हुई।

इस गीत में बच्चे का जन्म होने के बाद महिलाएँ कितनी खुश होकर पालना गीत गाती हैं इसका जिक्र हमें दिखाई देता है। बच्चों को देखकर महिलाएँ बहुत खुश हो जाती हैं। बच्चा देखने को कैसा लगता है इसकी चर्चा करते हुए कुछ महिलाओं की आँखें आनंद से भर आती हैं। इस प्रकार का यह भी एक गीत है।

“पालणा निजरे नारायणा हालवी यशोदा  
पालणा ऽऽ रंगीत बनविले  
चहूबाजू चिमणी मोर बसविले  
पालण्यात बाल निजविले  
नीज नीज बाला ऽऽ दारी बागुल बुआ आला  
नीज नीज बाला गोविंदा।”<sup>2</sup>

अनुवाद

सो जाओ नारायण पालना हिला रही है यशोदा  
पालना रंगीन बनाया है  
चारों तरफ चिड़ीयाँ, मयूर लगाये हैं  
पालने में लल्ले को सुलाया  
सो जाओ सो जाओ लल्ला आँगन में हौआ आया  
सो जाओ सो जाओ लल्ला गोविंदा।

लल्ले को सुलाते समय पालने को किस प्रकार सजाया जाता है जैसे- चिड़ीयाँ, मयूर आदि को लटकाया जाता है। इतना ही नहीं तो लल्ले को सुलाते समय हौआ का डर दिखाया जाता है।

## विवाह गीत

शादी तो सबके लिए आनंद का विषय होता है। शादी के समय आदिवासियों के जिस गाव में शादी होती है उसी गाँव के सब लोग मिलकर जिस परिवार में शादी है उनके लिए अपना काम छोड़कर सहायता करते हैं। शादी में सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे समूह में नाच गान करते हैं। ऐसे ही एक गीत में शादी के समय आदिवासी स्त्री गाती है-

“कलस तांब्या मी घेते बाई मी लग्नाला येते  
तुला नथ भी नाही लग्नाला येवू नको बाई  
नथभाड्याची घेते दादा मी लग्नाला येते  
तुला पोलका भी नाही लग्नाला येवू नको बाई  
पोलकाभाड्याचा घेते दादा मी लग्नाला येते।”<sup>3</sup>

अनुवाद

कलश लौटा में ले लूँगी सखि  
में शादी को आऊँगी  
तुझे नथ भी नहीं है  
आप शादी में मत आओ  
नथ किराए की ले लूँगी मैं शादी को आऊँगी  
तुझे पोल का भी नहीं है आप शादी को मत आओ  
पोल का किराए का ले लूँगी शादी को आऊँगी।

इसमें औरत को यह कहा जाता है कि तुम्हारे पास नथ, पोलका, साड़ी, कंगन आदि नहीं है। तुम शादी में मत जाओ। लेकिन उसे शादी में जाने की इतनी लालच होता है कि वह कहती है ये सभी चीजें मैं किराये से ले लूँगी और शादी में भाग लूँगी।

शादी होने के बाद दुल्हन ससुराल में जाते समय रोती है। तो माँ-बाप भाई-बहन या अन्य रिश्तेदार उनको समझाते हैं और कहते हैं कि ससुराल के लोग माँ-बाप के समान हैं। इस तरह समझाते हुए यह गीत गाया जाता है-

“तांबेची तार ठेचना मंदी  
आशा का रडती मनामंदी  
आशा का रडली ऽऽ मनामंदी  
तुला नाय दिल ऽऽ वनामंदी  
नाय दिल वनामंदी  
तुझा सासरा भिाला बाबावानी  
तुला वागवीन ग लेकीवानी  
तुला वागवीन ग लेकीवानी।”<sup>4</sup>

अनुवाद-

तांबे की तार स्टेशन में तांबे की तार स्टेशन में  
आशा क्यों रो रही हैं मन में  
आशा क्यों रो गई मन में  
क्यों रो रही है मन में  
तुझे नहीं दिया वन में  
तुझे नहीं दिया वन में  
नहीं दिया वन में  
तुझे ससूर मिला है पिता समान  
तुझे सँभालेगा बेटी की तरह  
तुझे सँभालेगा बेटी की तरह

इस तरह इसमें ससुराल के लोगों के बारे में बताया है की ससुराल वाले लोग माँ-बाप के समान होते हैं। तुझे अच्छी तरह सँभालेंगे। तुझे डरने की आवश्यकता नहीं है।

**त्यौहार, उत्सव के गीत**

आदिवासियों का मुख्य त्यौहार होली माना जाता है। होली के त्यौहार के समय लोग गाते हैं, नाचते हैं। चौपाल में इकट्ठा होकर गाँव की तरक्की के बारे में भी विचार विमर्श करते हैं। इस समय गाँव के सब लोग इकट्ठा होकर बहुत खेल खेलते हैं। चौपाल में ढोल बजाते हैं। इस प्रकार इस गीत के माध्यम से होली के त्यौहार का महत्व बताया है।

“होलू बायला सिनगार केला कयाचा ग  
होलू बायला सिनगार केला नारलाचा  
होलू बायला सिनगार केला शैदराचा  
होलू बायला सिनगार केला कुकवाचा  
होलू बायला सिनगार केला तांकाचा  
होलू बायला सिनगार केला पापड्यांचा।”<sup>5</sup>

अनुवाद

होली माँ को शृंगार किया किसका  
होली माँ को शृंगार किया नारियल का  
होली माँ को शृंगार किया सिंदूर का  
होली माँ को शृंगार किया कुमकुम का  
होली माँ को शृंगार किया चावल का  
होली माँ को शृंगार किया पापड का

इस गीत के माध्यम से होली का त्यौहार किस प्रकार सजाया जाता है यह स्पष्ट किया है। होली माता के लिए क्या-क्या किया जाता है। इन सभी बातों का जिक्र इस लोकगीत के माध्यम से किया है।

**पारिवारिक गीत**

महाराष्ट्र के ठाणे, नासिक, धुलिया आदि जिलों में कोकणा जनजाति दिखाई देती हैं। खेती और मजदूरी उनका परंपरागत व्यवसाय है। वे प्रकृति के पूजक होने के कारण रानशिवारी, गावशिवारी इस प्रकार के देवताओं को वे मानते हैं। इस जनजाति में शादी के समय अनेक प्रसंग अनेक दृश्य रेखांकित करनेवाले गीत गाए जाते हैं। ये गीत पारिवारिक भावनाओं पर आधारित होते हैं। जैसे-

“हाका मारीत बंगल्यापासून  
तुला पाहूनी लवल्या मोहनी  
पायाची जोडव कशी ग वहिनी  
दंडाच्या को कशी ग वहिनी।”<sup>6</sup>

अनुवाद

आवाज दे रहे हैं घर से  
तुझे देखकर झुक गई मोहिनी  
पाँव की जोड़ी कैसे है भाभी  
हाथों की ये वेल कैसी है भाभी

इसमें ननद अपनी भाभी से कहती है भाभी हम तुम्हें घर से पुकारते आ रहे हैं। तुम्हारे सामने मोहिनी भी फीकी पड़ जाएगी। तुम्हारे हाथों का वेल कैसा है भाभी इस प्रकार पाँव की जोड़ी कैसी है आदि बातों को लेकर इस गीत में जिक्र किया गया है।

**नमन गीत**

महाराष्ट्र के ठाणे जिलेमें रहनेवाले वारली जनजातियों का खेती एकमात्र साधन है। इनको नाचने-गाने का बेहद शौक है। छोटे-छोटे धार्मिक-सामाजिक प्रसंगों को वे विधिपूर्वक संपन्न करते हैं। प्राकृतिक चमत्कार और भूत-पिशाचों पर वारलियों का विश्वास है, श्रद्धा है। उनके धार्मिक व सामाजिक आचार विचारों पर हिंदू परंपराओं का अत्यधिक प्रभाव हुआ है। इनमें गाने की शुरुआत वंदना से होती है। पहले धरती माता, कणसरी माता आदि देवी-देवताओं का नमन होता है। इस कारण इनके गीतों में भारत माता, महात्मा गांधी और अंत में ढोलक दादा इस प्रकार का क्रम आता है-

“पहिला नमिन गणेश देवाला रे गणेश देवाला  
दूसरा नमिन भारत मातेला रे भारत मातेला  
तिसरा नमिन गांधी बाबाला रे गांधी बाबाला  
चौथा नमिन ढोलक दादाला रे ढोलक दादाला।”<sup>7</sup>

अनुवाद

“पहला प्रणाम गणेश जी को, गणेश जी को  
दूसरा प्रणाम भारत माँ को, भारत माँ को  
तीसरा प्रणाम गांधी बाबा को, गांधी बाबा को  
चौथा प्रणाम ढेलक दादा को, ढेलक दादा को।”

इस तरह से इस जनजाति के लोग अपने गीत के माध्यम से नमन करते हैं।

इस प्रकार बारिश न होने पर ठाकर जाति के लोग देवता की आराधना करते हैं। जिसके कारण बारिश होती है, फसल उगती है। इसके कारण वह ईश्वर के प्रति नमन गीत गाते हैं।

**पहिलं नमन माझं पहिलं नमन,  
नमन माझं धरती मातेला  
नमन माझं गुरु राया।  
दूसरं नमन माझं, दुसरं नमन,  
नमन माझं आई बापाला  
नमन माझं गुरु राया।”<sup>8</sup>**

अनुवाद

“पहला प्रणाम मेरा पहला प्रणाम  
प्रणाम मेरा धरती माँ को  
प्रणाम मेरा गुरुजी को  
दूसरा प्रणाम मेरा दूसरा प्रणाम  
प्रणाम मेरा माता-पिता को  
प्रणाम मेरा गुरुजी को।”

इस तरह इस जनजाति के लोग धरती माता, गुरुजी, माँ-बाप को गीत के माध्यम से नमन करते हैं।

**स्वागत गीत**

महाराष्ट्र के चन्द्रपुर और गड़चिरोली जिलों में ‘माड़िया गोंड’ जनजाति के आदिवासी लोग रहते हैं। उनमें शिक्षाका प्रमाण बहुत कम है। खेती, मजदूरी, गोबर चुनना, लकड़ी तोड़ना इन्हीं व्यवसायों पर उनका गुजारा होता है। त्यौहार, उत्सव, विवाह के अवसर पर उनके गीत, नृत्य होते हैं। वे सामुदायिक ‘रेलानृत्य’ करते हैं। रिरीलोSS-रे रिरीलो SS-रिरीलो’ ऐसा गाते हुए फेरा लगाने की शुरुआत करते हैं। अतिथियों का आगमन उन्हें अच्छा लगता है। वे अतिथियों के आगमन के समय गाते हैं।

“चेरे वाई रे, ये रे वाई रे, गर्मीत वाई रे  
गर्मीत बाई कबाल किसी हन्दन निम्न संगोन  
निम्न संगोन प्रतिकित्त वाई संगोना दिवाना  
बरीवाया रे”<sup>9</sup>

अनुवाद

“आओ अतिथि आओ  
हमारे बुलावे को ढालो मत  
हम तुम्हारे हैं  
तुम हमारे हो  
रंग रेलियाँ मनाएँ खूब मजा किया जाए  
आओ अतिथि आओ।”

गोंड जनजाति के लोग अतिथियों का स्वागत किस तरह करते हैं इसका बहुत अच्छी तरह से चित्रण इस गीत के माध्यम से किया है।

**मृत्यु के गीत**

हम जिस तरह आनंद के क्षणों में नृत्य-गायन करते हैं। उसी तरह आदिवासियों के वारली जनजाति में दुःख के प्रसंग में भी गीत गाए जाते हैं। कितना भी गरीब वारली क्यों ना हो वह भी कर्ज लेकर मृत व्यक्तियों की बरसी जरूर करता है। पुजारी और उसके साथी मृत व्यक्ति को लक्षित करके गीत गाते हैं।

“चंदा रे सूरया नमू लागल्या  
ढोसर देवी नमू लागल्या  
पाच नगाला नमू लागलं  
पाच पांडवाला नमू लागलं  
गावचे भगताला नमू लागलं  
भरले शोभेला नमू लागलं  
मी आहे दादू अजान बाल  
आथा माड्या राघु कुलेव्या।”<sup>10</sup>

अनुवाद

“चाँद और सूरज को नमन किया  
ढोसर देवता को नमन किया  
पाच नगाला नमन किया  
पाच पांडव को नमन किया  
गाव के भक्त को नमन किया  
सभी जनता को नमन किया  
मैं हूँ दादू अज्ञान बच्चा  
अभी मेरे राघू कोली”

इसमें मृत व्यक्ति की बरसी करते समय प्रकृति के विभिन्न देवताओं को नमन किया गया है। अंत में गानेवाला पूजारी अपने को अज्ञानी मानते हुए मृत व्यक्ति को याद करता है। इस प्रकार की प्रथा अन्य जनजाति में दिखाई नहीं देती।

अतः हम ऐसा कह सकते हैं कि आदिवासी समाज में लोकगीतों का बहुत बड़ा महत्व है। संगीत उनके जीवन का महत्वपूर्ण साधन है। उनकी संस्कृति में अलग-अलग प्रकार के गीत हैं जो अन्य किसी संस्कृति में नहीं हैं। इन लोक गीतों द्वारा आदिवासी संस्कृति का परिचय हमें ज्ञात होता है तथा आदिवासी लोगों का जीवन संगीत के बिना अधूरा है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 90
2. राणपाखरांची गाणी, संपा. डॉ. संजय लोहकरे, फडकी प्रकाशन अकोले, अहमदनगर, प्रथम संस्करण-2009, पृ. 121
3. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 90
4. राणपाखरांची गाणी, संपा. डॉ. संजय लोहकरे, फडकी प्रकाशन अकोले, अहमदनगर, प्रथम संस्करण-2009, पृ. 51
5. आदिवासी गोड गाणी, संपा. गोविंद गाटे, श्री विद्या प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण-1986, पृ. 16
6. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 92
7. आदिवासी ठकर आणि त्यांची लोकगीते, संपा. मा. रा. लोखंडे, पद्मगंधा प्रकाशन पुणे प्रथम, संस्करण 2003, पृ. 138
8. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 90
9. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 94
10. आदिवासी लोक भाग-2 (संपा. रमणिका गुप्ता) शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वितीय संस्करण-2012, पृ. 90

# क्या अद्भुत नाथ का जीता, कीर्ति स्तम्भ (कुंभा) का मुख्य स्थपति था?



www.shodhshree.com

डॉ. अम्बिका ढाका

सहायक आचार्य, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर

## शोध सारांश

अद्भुत नाथ का शिव मन्दिर 15वीं शती ई. में किले पर बने मन्दिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह मन्दिर राजस्थान के चित्तौड़गढ़ किले पर किले की हदबन्दी की पूर्वी दीवार के पास अन्दर की ओर करीब 150 मीटर की दूरी पर सूरजपोल दरवाजे के पास स्थित है। यह देवालय भूमिज शैली की किले पर एक मात्र संरचना है। मन्दिर के जंघा भाग पर उत्कीर्ण संवतों के आधार पर इसका काल निर्धारण सन् 1485 से 1495 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। अद्भुतनाथ मन्दिर के निर्माण में अनेक स्थपति एवं शिल्पियों का योगदान रहा है जिन्होंने स्थापत्य के अतिरिक्त इस मन्दिर के मूर्ति शिल्पांकन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके नाम देवालय की पीठ, वेदीवन्द व जंघा पर अनेक स्थानों पर उत्कीर्ण किये हुए देखने को मिलते हैं। इनकी शिल्प विद्या को प्रकाश में लाने के लघु प्रयास के साथ ही तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि बलराज जइता का पुत्र नहीं था। वह जीता का पुत्र था जिसने अद्भुत नाथ पर एक स्थपति के रूप में कार्य किया।

संकेताक्षर : देवालय, स्थपति, शिलालेख, भूमिज, गर्भगृह, मण्डप।

**अ**द्भुत नाथ का शिव मन्दिर (छ.चि.सं. 1) राजस्थान के चित्तौड़गढ़ किले पर किले की हदबन्दी की पूर्वी दीवार के पास अन्दर की ओर करीब 150 मीटर की दूरी पर सूरजपोल दरवाजे के पास स्थित है। किले का इतिहास पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर छठी शती ई. से पूर्व का प्राप्य नहीं है। किले से उत्तर दिशा में करीब 10 कि. मी. की दूरी (सीधे रूप में) पर प्राचीन मध्यमिका के अवशेष<sup>1</sup> विद्यमान हैं। वर्तमान में इसे नगरी के नाम से जाना जाता है। नगरी की वर्तमान बसावट मुख्य पुरास्थल के उत्तर में है। सिक्कों के अभिलेखन के आधार पर यह शिवि जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। दूसरी शती ई. पू. में यह गणराज्य यवन<sup>2</sup> आक्रमण का शिकार हुआ। छठी शती ई. के प्रथम चरण तक मध्यमिका एक स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र था। किले बन्दी में स्थित पुरास्थल पर पाँचवी शती ई. में निर्मित विशाल शिव मन्दिर के अवशेष इसके प्रमाण हैं।

चित्तौड़गढ़ किले से छठी शती ई. का एक खंडित शिलालेख<sup>3</sup> प्राप्त हुआ है। शिलाफलक पर दो भिन्न-भिन्न आलेख हैं। परन्तु इनमें समय का अन्तर लिपि के आधार पर अल्प है। लिपि के आधार पर इस शिलाभिलेख का समय छठी शती ई. का पूर्वार्द्ध माना गया है। शिलालेख के आधार पर दशपुर (वर्तमान मंदसोर) व मध्यमिका (नगरी) दशपुर के औलीकर शासक के राजस्थानीय की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत थे। शिला फलक के द्वितीय शिलाभिलेख के आधार पर चित्तौड़गढ़ किले पर मन्दिर के निर्माण का सन्दर्भ भी देखने को मिलता है। शिलालेख के आधार पर यह स्पष्ट है कि चित्तौड़गढ़ का किला छठी सदी के पूर्वार्द्ध में राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र बन चुका था। मध्यमिका (नगरी) इस समय तक एक स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व का केन्द्र नहीं रह गई थी। चित्तौड़गढ़ किले पर हमें छठी सदी की कुछ प्रतिमाओं के खंडित भाग भारतीय पुरातत्त्व

सर्वेक्षण विभाग के किले पर उनके प्रतिमा संग्रह में देखने को मिलते हैं। लेकिन किले पर छठी सदी के देवालय की संरचना के स्पष्ट प्रमाण अभी तक अप्राप्य हैं। कुंभा के महलों के पश्चिम में किले की दीवार से सटे मन्दिर का गर्भगृह (मात्र कंठी भाग तक) व मात्र मुख चतुष्की को स्थापत्य के आधार पर 7वीं शती ई. में रखा जा सकता है। कालिका मन्दिर (मूल रूप से सूर्य मन्दिर) व कुंभ श्याम मन्दिर का कंठी तक गर्भगृह व मण्डप का भाग मूल व आठवीं शती ई. की संरचनाएं हैं। कालिका मन्दिर के सम्मुख ढलवाँ भाग में स्थापित देवी का मन्दिर<sup>5</sup> 9वीं शती ई. का है। समिद्धेश्वर मन्दिर के उत्तर दिशा में 8वीं से 10वीं शती ई. तक के देवाल्यों के अवशेष देखे जा सकते हैं। समिद्धेश्वर मन्दिर की मूल संरचना<sup>6</sup> परमार शासक भोज द्वारा की गई थी परन्तु विध्वंस के पश्चात् कालान्तर में इसकी जंघा व शिखर का निर्माण कार्य मोकल<sup>7</sup> द्वारा पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में किया गया। यद्यपि शिलालेख से यह भाषित होता है कि सम्पूर्ण देवालय मोकल द्वारा बनाया गया है। कीर्ति स्तम्भ के पश्चिम में समिद्धेश्वर क्षेत्र की चार दीवारी से सटा 13वीं शती ई. का खण्डित विष्णु मन्दिर का भाग देखने को मिलता है।

अद्भुत नाथ का देवालय 15वीं शती ई. के उत्तरार्द्ध का किले की एक मात्र भूमिज शैली की संरचना है। इसके निर्माण में अनेक वास्तुविद एवं मूर्ति शिल्पकारों का योगदान रहा है। यह देवालय पश्चिमाभिमुख एक ऊँची पीठ पर बना हुआ है। इसका निर्माण काल देवालय की मूर्तियों पर उत्कीर्ण संवत् के आधार पर ई. सन् 1485 से 1495 के मध्य आंका जा सकता है। मंडप में प्रवेश के लिये तीन द्वार हैं। गर्भगृह में तीन सीढ़ियाँ नीचे उतने पर उण्डे तल पर एक छोटे कक्ष में शिवलिंग की विद्यमानता है। शिवलिंग का ऊपरी गोल भाग तल से ऊपर अल्प रूप में दृष्टिगोचर है। उण्डे कक्ष की पृष्ठ की दीवाल की ताक में पार्वती की प्रतिमा स्थापित है। उण्डे कक्ष के तल से 1.42 मीटर की ऊँचाई पर गर्भगृह की पृष्ठवर्ती दीवाल से सटा शिव का आवक्ष त्रिमूर्ति स्वरूप स्थापित है। त्रिमूर्ति में उमावक्त्र (दक्षिणवर्ती भाग) सद्योजात (मल्लय भाग) तथा अघोर (वामवर्ती भाग) का अंकन है। ये मुखाकृति पंचमहाभूत<sup>8</sup> में से तीन तत्त्व जल, पृथ्वी व अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये मुखाकृति एकादश रुद्र<sup>9</sup> में प्रथम तीन रुद्र के द्योतक हैं। शिव का इस प्रकार का त्रिमूर्ति आवक्ष स्वरूप किले के समिद्धेश्वर मन्दिर में भी स्थापित है।

अद्भुत नाथ देवालय की जंघा की पूर्वाभिमुख रथिका में हमें शिव की नृत्यरत मुद्रा का अंकन देखने को मिलता है। इस प्रतिमा का शिल्पी बलराज था जिसने इसके भव्य स्वरूप को निरूपित किया। प्रतिमा को विध्वंसकारी तत्त्वों ने काफी क्षतिग्रस्त किया है। प्रतिमा की पाद पीठ पर एक पंक्तिका लेख है (छ.चि.सं.2) जो इस प्रकार है—

“संवत् 1547 वर्षे वैशाख सुदि 3 सोमे  
सूत्रधार जीता सुत बलराज घडितं”।।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा इस पंक्तिको राजपुताना संग्रहालय अजमेर के वार्षिक प्रतिवेदन में प्रकाशित किया गया है। इस पंक्तिके प्रकाशन में निम्न दो त्रुटियां देखने को मिलती हैं —

1. प्रकाशन में संवत् 1540 का उल्लेख है।
2. दिन के रूप में रविवार का उल्लेख किया गया है।  
उत्कीर्ण पंक्तिके छायाचित्र (छा.चि.सं.2) से स्पष्ट है कि उत्कीर्ण पंक्ति का संवत् 1547 है तथा इसकी इकाई के अंक को 7 के स्थान पर शुन्य पढ़ने में ओझा द्वारा भूल हुई है। दिन 'सोम' छायाचित्र में स्पष्ट है तथा इसका रवि के रूप में पठन स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है।

ओझा द्वारा नटराज की प्रतिमा के अभिलेखीय<sup>10</sup> पंक्तिका केवल प्रकाशन ही नहीं किया गया है अपितु उसकी व्याख्या में ओझा द्वारा सूत्रधार जीता को कीर्ति स्तम्भ (कुंभा) के मुख्य स्थपति जइता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ओझा ने बलराज को जइता का चौथा पुत्र बतलाया है। इस प्रस्तुती को स्वीकार करने की स्थिति में हमें बलराज को जइता का चौथा पुत्र स्वीकारना होगा। आर.सी. अग्रवाल ने भी ओझा के अनुसरण में बलराज को जीता (जइता) का चौथा लघु पुत्र<sup>11</sup> माना है। सोमानी<sup>12</sup> ने भी बलराज को जइता के पुत्र के रूप में उल्लेख किया है।

निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर यह स्वतः सिद्ध है कि अद्भुतनाथ की नटराज की प्रतिमा को बनाने वाले बलराज का पिता जीता, कीर्ति स्तम्भ का मुख्य स्थपति जइता नहीं अपितु यह अन्य सूत्रधार है जिसने अद्भुत नाथ मन्दिर के निर्माण में अपना योगदान दिया है।

- कुंभा के कीर्ति स्तम्भ की पाँचवीं मंजिल के अभ्यंतर भाग के नैऋत कोण के पश्चिमाभिमुख भाग पर जइता व उसके तीन पुत्र नापा, पामा व पूजा का मूर्त रूप (छा.चि.सं.3) उत्कीर्ण है।

जड़ता के पृष्ठ में (छा.चि.सं.3) उसके छोटे पुत्र पामा का मूर्त रूप है। पामा के दक्षिण हस्त में हथौड़ी व वाम खंडित है। मूर्ति की पाद पीठ पर 'पुत्र पोमो लघु' नाम उत्कीर्ण है। कीर्ति स्तम्भ की पाँचवी मंजिल का समय, कीर्ति स्तम्भ के विभिन्न संवतांकन के औसत के आधार पर संवत् 1505 निर्धारित किया जा सकता है। कीर्ति स्तम्भ के कार्य के प्रारंभ की तिथि संवत् 1499 स्तम्भ की द्वितीय मंजिल ( छा.चि.सं. 4) की दीवाल पर बनी जाली पर उत्कीर्ण है। निर्माण की अंतिम तिथि आठवीं मंजिल पर संवत् 1515 उत्कीर्ण है। यद्यपि नवीं मंजिल की प्रशस्ति में कीर्ति स्तम्भ की प्रतिष्ठा का समय संवत् 1505<sup>13</sup> उल्लिखित है। कीर्ति स्तम्भ की प्रथम मंजिल से अन्तिम मंजिल तक के संवत् समयांकन में क्रमबद्धता नहीं है। जैसे प्रथम मंजिल में संवत् 1501 का अंकन है तथा द्वितीय मंजिल में संवत् 1499 का अंकन है।

कीर्ति स्तम्भ की पाँचवीं मंजिल के औसत संवत् समयांकन के आधार पर इसका समय संवत् 1505 पूर्व में निर्धारित किया जा चुका है। पामा संवत् 1505 में युवावस्था को प्राप्त कर (छा.चि.सं.3) जड़ता के पृष्ठ में खड़ा है। इस समय पामा की आयु उसके मूर्त रूप के आधार पर 20 वर्ष से कम नहीं आंकी जा सकती है। पामा जड़ता का छोटा पुत्र है तथा उसकी 20 वर्ष की आयु के समय तक जड़ता के अन्य पुत्र अर्थात् चौथा पुत्र नहीं हुआ था। यदि होता तो पामा के लिये लघु शब्द का प्रयोग नहीं होता। पामा की 20 वर्ष की आयु के समय, जड़ता एक ऊँचे आसन पर मूर्त रूप में स्थित है तथा (छा.चि.सं. 3) पैर मोड़कर पटबन्ध का सहारा ले रखा है। लम्बी दाढ़ी व पूर्ण वार्द्धक्य को प्राप्त कर चुका है। अतः ऐसी स्थिति में कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति जड़ता के चौथी सन्तान की उत्पत्ति को स्वीकार नहीं करेगा।

- जड़ता का नाम कीर्ति स्तम्भ की प्रथम से नवीं मंजिल तक कहीं भी जीता के रूप में उत्कीर्ण नहीं हुआ है। जड़ता का नाम किले के महावीर मन्दिर के मंडप के प्रवेश द्वार के ऊपरी भाग में 'जता' एवं 'जैता' के रूप में उत्कीर्ण हुआ है।
- किले के रामपोल दरवाजे की वाम बुर्ज की पीठ के कर्णिका भाग पर 'जैता' शब्द उत्कीर्ण है जो

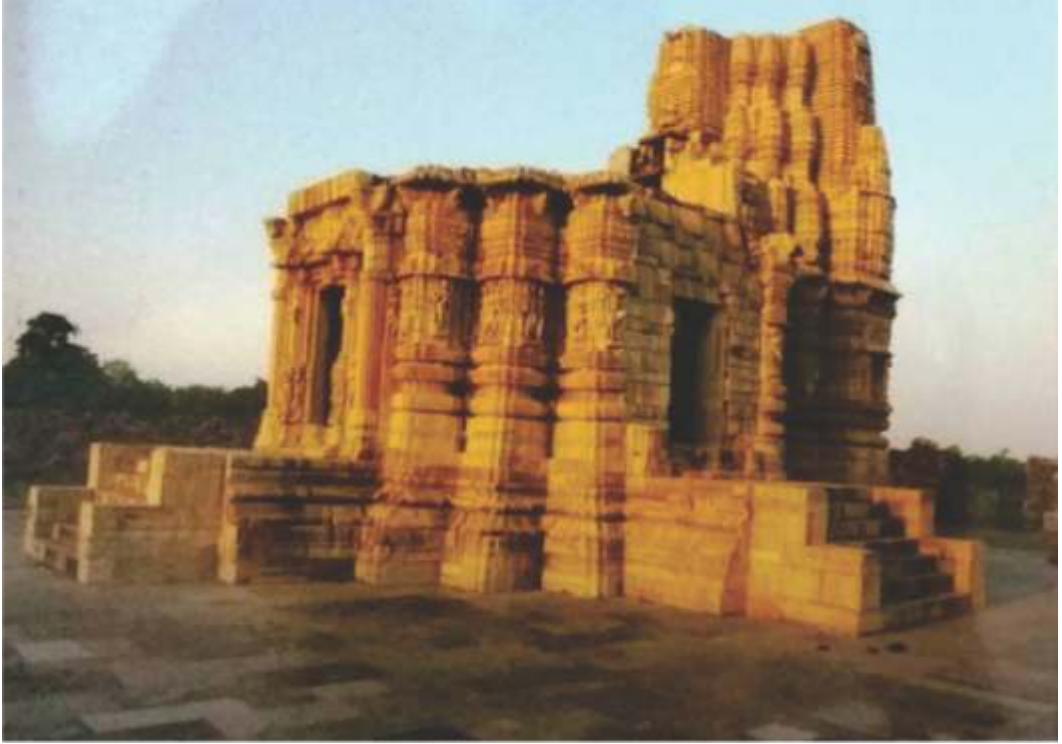
जड़ता के नाम का पर्यायवाची शब्द है।

- अद्भुत नाथ मन्दिर की दक्षिणाभिमुख पीठ पर स्थपति 'जीता' का नाम उत्कीर्ण है। नटराज की प्रतिमा (पूर्व वर्णित) की पाद पीठ पर उत्कीर्ण बलराम इसी जीता का पुत्र है न कि कीर्ति स्तम्भ के जड़ता का जिसका किले पर उसके समकालीन किसी भी स्मारक पर उसका नाम जीता के रूप में उत्कीर्ण देखने को नहीं मिलता है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बलराज जड़ता का पुत्र नहीं था। वह जीता का पुत्र था जिसने अद्भुत नाथ पर एक स्थपति के रूप में कार्य किया है। जीता को जड़ता के नाम का पर्यायवाची समझना सर्वथा भूल है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bhandarkar D.R., *The Archaeological Remains and Excavations at Nagari, Memoir No.4, A.S.I., 1920*
2. अग्रवाल, वासुदेव, 'प्राचीन मध्यमिका की नारायण वाटिका', शोध पत्रिका, भाग 4, अंक 3, पृष्ठ-36
3. *Epigraphia Indica XXXIV, PP: 53-58, 1960-61*
4. अग्रवाल आर.सी., 'चित्तौड़ क्षेत्र का अज्ञात प्राचीन मन्दिर', शोध पत्रिका, वर्ष 35, अंक 3-4, पृ.-75
5. *Encyclopaedia of Indian Temple Architecture, North India Vol. II, Part 2: Text, pp. 303-4, 1991*
6. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, *ओझा निबन्ध संग्रह (प्रथम खंड) तृतीय संस्करण, 2010, पृष्ठ-157*
7. *Epigraphia Indica, Vol. 2, pp. 408-9*
8. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय आवृत्ति (2009), तृतीय खंड, अध्याय -48, पृष्ठ -338, नाग पब्लिशर्स, देहली।
9. *अपराजितपृच्छा, आरियंटल संस्थान, बड़ौदा, 1950, पृष्ठ-541*
10. *वार्षिक प्रतिवेदन, राजपूताना संग्रहालय, अजमेर, 31 मार्च 1921, पृष्ठ-5-6*
11. Agrawal, R.C. "Some Famous Sculptors and Architects of Mewar (15<sup>th</sup> Century A.D.¼)", *The Indian Historical Quarterly, Vol XXII (1-4¼), 1957, p.-327*
12. सोमानी, राम वल्लभ, *वीर भूमि चित्तौड़ (1969), पृष्ठ-209*
13. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, *उदयपुर राज्य का इतिहास (प्रथम खंड), चतुर्थ संस्करण (2015), पृष्ठ-70*



चित्र सं 1: अद्भुत नाथ शिव मन्दिर



चित्र सं 2: शिव की नृत्यरत मुद्रा की पाद पीठ पर एक पंक्ति का लेख



चित्र सं 3: कीर्ति स्तम्भ पर जड़ता व उसके तीन पुत्र नापा, पामा व पूंजा का मूर्त रूप



चित्र सं 4: कीर्ति स्तम्भ की द्वितीय मंजिल की दीवाल पर बनी जाली पर उत्कीर्ण तिथि संवत् 1499

# भारतीय प्रशासनिक और भारतीय पुलिस सेवाओं के निर्माण में सरदार पटेल की भूमिका

बबली राम बैरवा

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

02 सितम्बर, 1946 में अंतरिम सरकार में सरदार वल्लभ भाई ने देश के गृहमंत्री पद की शपथ ली तथा इस पद पर रहते हुए उन्होंने कई महत्वपूर्ण राजनैतिक एवं प्रशासनिक कार्य किए। सरदार पटेल ने भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा का गठन किया। उन्होंने केंद्र तथा राज्य में भारतीय प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं संबंधी पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करने का कार्य बड़ी कुशलता पूर्वक किया। राष्ट्रीय एकता तथा भारत के प्रशासन को स्वतंत्र एवं स्वदेशी बनाने हेतु सरदार पटेल अंग्रेज अधिकारियों की मांगों को भी अस्वीकार कर दिया था। जिसके पश्चात् ब्रिटिश लोग स्वतः ही शांति पूर्वक अपने देश चले गए। इसके लिये उन्हें बहुत से ऐतिहासिक निर्णय लेने पड़े थे वे सदैव अनुकरणीय हैं। अतः सरदार पटेल को भारत में प्रशासनिक सेवाओं का जनक भी कहा जाता है। यह शोध पत्र पूर्णतः द्वितीयक अध्ययन स्रोतों पर आधारित है।

**संकेताक्षर :** राजनैतिक, प्रशासनिक, लोकतांत्रिक, साम्राज्यवाद, जनहित, ऐतिहासिक, वरिष्ठ, निष्पक्ष, कुशलता, पारदर्शिता, निर्णायक, एवं न्यायपूर्ण आदि।

**स**रदार पटेल का गृहमंत्री के पद पर रहते हुए प्रमुख प्रशासनिक कार्य भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा के गठन का रहा है। उन्होंने केंद्र तथा राज्य में प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं संबंधी पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करने का कार्य बड़ी कुशलता पूर्वक किया। वास्तव में देखा जाए तो भारत विभाजन के पश्चात् प्रशासन के एकदम बदल जाने, साम्राज्यवाद के स्थान पर लोकतांत्रिक शासन की स्थापना तथा अधिकारियों में उत्तरदायित्व की भावना जनहित की ओर मोड़ कर उसे स्वस्थ बनाने की इच्छा, अधिकारियों में विश्वास की भावना जागृत करने आदि कई समस्याओं का समाधान सरकार के समक्ष था। इन सब में सबसे बड़ी एवं महत्वपूर्ण समस्या थी केंद्र और राज्य में प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं से संबंधित पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करना। पहले इन पदों पर भारत मंत्री की सेवाओं इंडियन सिविल सर्विस तथा इंडियन पुलिस के अधिकारी रखे जाते थे। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इनमें नए लोगों की भर्ती पर रोक लगा दी। अतः इस समस्या के समाधान हेतु सरदार पटेल ने भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा का गठन किया। इसके लिये उन्हें बहुत से ऐतिहासिक निर्णय लेने पड़े। वे सदैव अनुकरणीय हैं। अतः यह कार्य उनकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता तथा प्रशासनिक नेतृत्व क्षमता को दर्शाता है। यह शोध पत्र पूर्णतः द्वितीयक अध्ययन स्रोतों पर आधारित है।

## शोध के उद्देश्य

- सरदार पटेल की प्रशासनिक नेतृत्व क्षमता को जानना।
- भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के निर्माण में सरदार पटेल की भूमिका को जानना।
- भारतीय पुलिस सेवा के निर्माण में सरदार पटेल की सहभागिता का अध्ययन करना।

- लोक सेवाओं के लिए संविधान में गारंटियों का समावेश कराने में सरदार पटेल की भूमिका को जानना।
- भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और भारतीय पुलिस सेवाओं की लोकतांत्रिक शासन की स्थापना में भूमिका का अध्ययन करना।

### साहित्य की समीक्षा

डॉ. रविन्द्र कुमार ने सरदार पटेल के प्रमुख निर्णय, कल्पाज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014, नामक पुस्तक में सरदार पटेल द्वारा अपने जीवन में विभिन्न पदों पर रहते हुए लिए गए प्रमुख निर्णयों तथा स्वतंत्रता के बाद देश के नव-निर्माण में सरदार पटेल के योगदान, भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं पुलिस सेवा का गठन, सोमनाथ मंदिर का पुनः निर्माण, गांधी सार विधि, कमला नेहरू अस्पताल की रूपरेखा, संविधान सभा मंत्रिमण्डल में अम्बेडकर का पुनः मंत्री बने रहना तथा हैदराबाद की समस्या को सैनिक कार्यवाही के द्वारा ही हल करना, 1909 में मार्ले-मिंटो सुधारों के तहत साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनाव व्यवस्था का भी विरोध, हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का कांग्रेस संसदीय समिति के अध्यक्ष 1934 पर रहते हुए लिए गए निर्णय, भारत शासन अधिनियम 1935 के प्रावधानुसार प्रांतीय विधान सभाओं के चुनावों का संचालन, अक्टूबर, 1947 में कश्मीर का भारत में विलय आदि का वर्णन किया गया है।

रविन्द्र कुमार ने सरदार वल्लभ भाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991, नामक पुस्तक में सरदार पटेल के राजनीतिक जीवन, सार्वजनिक जीवनी, विभिन्न आंदोलनों में सहयोग, एक कुशल नेता व प्रशासन तथा उनके द्वारा किए गए विभिन्न कार्यों, किसानों के लिए 1917 खेड़ा सत्याग्रह, 1919 में सरदार पटेल को अहमदाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में कार्य, राजनीति में प्रवेश, गाँधीजी के साथ 1920 में असहयोग आंदोलन, 1928 में बारदोली सत्याग्रह का सफल नेतृत्व के अलावा भारतीय प्रशासनिक सेवाएं तथा भारतीय पुलिस सेवाओं का गठन, 554 से अधिक देशी रियासतों को शांतिपूर्वक भारत संघ में विलय, धार्मिक साम्प्रदायिकतावादी दृष्टिकोण, भारत की एकता व अखंडता को बनाए रखने के लिये भारत-पाकिस्तान विभाजन आदि की व्याख्या की गयी है।

डॉ. एन. सी. मेहरोत्रा एवं डॉ. रंजना कपूर ने 'सरदार वल्लभ भाई पटेल व्यक्तित्व एवं विचार,' आत्माराम एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, 2012 नामक पुस्तक में सरदार पटेल की राजनीतिक भूमिका, राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित उपेक्षित महत्वपूर्ण तथ्यों के वर्णन के साथ बताया है कि पटेल बचपन से ही साहसी एवं बुद्धिमान विद्यार्थी थे। पटेल में त्याग की भावना, दृढ़ इच्छा शक्ति, उनकी कर्तव्यनिष्ठा तथा स्थानीय क्षेत्र में भी योगदान, खेड़ा आंदोलन का सफल नेतृत्व, 1919 में सरदार पटेल ने सरकार की रौलेट एक्ट का विरोध, 1922 में गाँधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग, 1921 में स्वदेशी के आंदोलन के लिए अहमदाबाद में विदेशी कपड़ों की होली जलाना, 1923 में नागपुर में झंडा सत्याग्रह के संचालन करना, 1928 में किसानों की लगान बढ़ोतरी के खिलाफ बारदोली सत्याग्रह, 31 मार्च, 1930 को काँग्रेस के कर्चौची अधिवेशन की अध्यक्षता करना, गृहमंत्री पद पर रहते हुए देशी राज्यों का एकीकरण तथा अखिल भारतीय सेवाओं का संचालन करना, सामाजिक कार्यों में उन्होंने हिंदु-मुस्लिम एकता तथा जाति प्रथा एवं स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने का जोर दिया था आदि का उल्लेख है।

इजि. प्रेमलाल, डॉ. सुधासिंह ने अखंड भारत के निर्माता सरदार पटेल, 2012 नामक पुस्तक में सरदार पटेल के गृहमंत्री के रूप में किए गए कार्यों व निर्णयों का वर्णन है जिसमें हिन्दु मुस्लिम एकता पर जोर, विभाजन के बाद शरणार्थियों की समस्या को शांतिपूर्वक हल करना, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने पर जोर, युवाओं को स्वदेशीकरण की शिक्षा एवं नव निर्माण हेतु प्रयास में छात्रों से कहा कि आप लोग विदेश जाकर अपनी देशी शिक्षा का लाभ उठाने व देशको सुरक्षित व सफल बनाने में सहयोग करे की अपील की थी। सरदार पटेल का सबसे प्रमुख कार्य देशी राज्यों का विलीनीकरण था जिसमें देशकी 560 से छोटी बड़ी रियासतों को एक साथ मिलाना सबसे बड़ी समस्या थी को बड़ी चतुराई व सहयोग की भावना के साथ विलय तथा कश्मीर व हैदराबाद की सबसे बड़ी समस्या को सुलझाना प्रमुख है। अतः सरदार पटेल को 'अखण्ड भारत का निर्माता' भी कहा जाता है जो परे विश्व में एकता के प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं इन सभी बातों की व्याख्या इस पुस्तक में की गई है।

02 सितम्बर, 1946 में अंतरिम सरकार में सरदार वल्लभ भाई ने देश के गृहमंत्री पद की शपथ ली तथा इस

पद पर रहते हुए उन्होंने कई राजनैतिक एवं प्रशासनिक महत्वपूर्ण कार्य किए। सरदार पटेल का गृहमंत्री के पद पर रहते हुए प्रमुख प्रशासनिक कार्य भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा के गठन का रहा है। उन्होंने केंद्र तथा राज्य में प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं संबंधी पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करने का कार्य बड़ी कुशलता पूर्वक किया। वास्तव में देखा जाए तो देश विभाजन के पश्चात् प्रशासन के एकदम बदल जाने, साम्राज्यवाद के स्थान पर लोकतांत्रिक शासन की स्थापना तथा अधिकारियों में उत्तरदायित्व की भावना जनहित की ओर मोड़ कर उसे स्वस्थ बनाने की इच्छा, अधिकारियों में विश्वास की भावना जागृत करने आदि कई समस्याओं का समाधान सरकार के समक्ष था। इन सब में सबसे बड़ी एवं महत्वपूर्ण समस्या थी केंद्र और राज्य में प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं से संबंधित पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करना। पहले इन पदों पर भारत मंत्री की सेवाओं इंडियन सिविल सर्विस तथा इंडियन पुलिस के अधिकारी रखे जाते थे। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इनमें नए लोगों की भर्ती पर रोक लगा दी। जिसका प्रमुख कारण 1945 में ब्रिटेन में मजदूर दल की नवनिर्मित सरकार का भारत छोड़ने का निर्णय तथा वरिष्ठ अधिकारियों की सेवानिवृत्ति होना।<sup>1</sup> ऐसे में पदों की रिक्तता बढ़ती चली गई। अतः इसने एक समस्या का रूप में ले लिया और कर्मचारियों की तंगी बन गई।

इसके अलावा दूसरी समस्या यह थी कि जो अंग्रेज अधिकारी भारत में अपनी सेवाओं को जारी रखना भी चाहते थे। वे दो प्रत्याभूतियां चाहते थे। प्रथम-वे अपने को पूर्व में दिए गए अधिकारों की एक निश्चित अवधि पश्चात् वे सवेतन छुट्टी लेकर इंग्लैंड वापिस जा सकें को बनाए रखना चाहते थे। द्वितीय-वे भारत में रहे तो अपनी ब्रिटिश नागरिकता के साथ रहे। भारत सरकार यह भी सुनिश्चित करें उनकी यह मांग थी। इन शर्तों को लेकर लॉर्ड माउंटबेटन ने भी सरकार को अपनी राय रखी। परंतु सरदार पटेल ने इन दोनों शर्तों को मानने से इनकार कर दिया।<sup>2</sup> जिसके पश्चात् ब्रिटिशलोग स्वतः ही शांति पूर्वक अपने देश चले गए। अतः सरदार पटेल का उनकी मांगों को अस्वीकार करने के पीछे स्वतंत्र भारत के प्रशासन को स्वदेशी बनाने की भावना थी।

सरकार पर बढ़ता दबाव तथा अनेक उपायों से सरदार पटेल ने इस समस्या का सामना करते निम्न प्रावधान

सुझाए-1. भारत की स्वतंत्रता के बाद अनुपातिक पेंशन पर सेवानिवृत्ति होने तथा कैरियर खोने के लिए मुआवजा प्राप्त करने का विकल्प केवल अखिल भारतीय सेवाओं के यूरोपीय सदस्यों तक ही सीमित नहीं रहे। 2. जहां तक भारतीय सदस्यों का प्रश्न था, उनका मानना था कि उनका कर्तव्य नई राष्ट्रीय सरकार को अपनी सेवाएं देने का है, अतिरिक्त इसके कि किसी कारण से किसी अधिकारी की सेवाओं की जरूरत उसे नहीं रहे। 3. इस कारण पटेल ने उन लोगों को पूरा विश्वास दिया कि उनकी सेवा की शर्तों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा सेवाएं बनी रहेंगी। 4. सरदार ने यह गारंटियां केवल अखिल भारतीय स्तर की सेवाओं को ही देना स्वीकार किया। प्रांतीय सेवाओं को नहीं क्योंकि वे प्रांतीय सरकार की सेवाओं के सदस्य को देशी राज्यों के संदर्भ में कुछ हद तक देखते थे।<sup>3</sup> अतः इस समस्या का समाधान भी सरदार पटेल ने अपनी कुशल बुद्धिमत्ता, तथा प्रशासनिक नेतृत्व शक्ति के कारण बड़ी कुशलता पूर्वक किया था।

लॉर्ड माउंटबेटन उनके लिए ज्यादा गारंटियां चाहते थे। परंतु पटेल ने उनके प्रस्ताव को भी अस्वीकारते हुए कहा कि “यदि कोई अधिकारी इससे अधिक गारंटी हमसे से मांगता है तो उसका कारण केवल हमारे आशयों में अविश्वास तथा हमारी सद्भावना को चुनौती ही हो सकती है। ऐसे व्यक्ति को मैं सरकारी सेवा में सहायक नहीं मानूंगा, बल्कि चाहूंगा कि वह इस सेवा को छोड़ दें।”<sup>4</sup> उक्त प्राथमिक प्रावधानों के बाद भी प्रशासन में बाधाएं उत्पन्न हो रही थी। अतः प्रशासनिक समस्याएं तथा सरकार के कार्य को सुचारु संचालन हेतु सरदार पटेल ने कुछ ऐतिहासिक कदम उठाए थे।

**नई सेवाओं का गठन तथा नियुक्ति या-** सरदार पटेल ने सरकारी कार्य को सुचारु रूप से संचालन तथा समस्याओं के निराकरण हेतु सरदार ने प्रांतीय सरकारों के साथ तत्काल परामर्श कर उनकी सहमति तथा समर्थन में दो सेवाओं के गठन का निर्णय किया। जिनमें भारतीय अधिकारी हो तथा भारतीयों द्वारा नियंत्रित हो। अतः 18 अक्टूबर, 1946 में गृह मंत्री पटेल ने पुरानी “आई. सी. एस.” के स्थान पर नवीन “अखिल भारतीय सेवाएं” तथा “आई. पी. एस.” के स्थान पर “इंडियन पुलिस सर्विस” (भारतीय पुलिस सेवा) के गठन की मंजूरी दी।<sup>5</sup> यह दोनों सेवाएं उनकी पूर्ववर्ती सेवाओं के समान प्रांतीय स्तर की थी। परंतु इनके भर्ती सेवा की शर्तें तथा अनुशासनिक कार्रवाहियों का नियम केंद्रीय सरकार तथा पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा होता था।

सत्ता हस्तांतरण के पूर्व भारत सरकार के उपसचिव आर्थर हेण्डरसन तथा सरदार पटेल के मध्य दीर्घकालीन वार्ता हुई। वार्ताओं के दौरान सरकार ने लोक सेवा के संबंध में आश्वासन मांगा कि हस्तांतरण से पूर्व राज्य सचिव की सेवाओं के अधिकारियों की शर्तों के संबंध में ब्रिटिश पार्लियामेंट के संतोष अनुरूप व्यवस्था अवश्य हो जानी चाहिए। अतः भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम-1947 की धारा 10(2) में सेवाओं के संबंध में समुचित गारंटी दी की गई। स्वतंत्रता के पूर्व ज्यादातर ब्रिटीश अधिकारियों द्वारा सेवानिवृत्त होने तथा देश विभाजन के कारण मुस्लिम पदाधिकारियों द्वारा पाकिस्तान चले जाने से प्रशिक्षित सेवा वर्ग की अत्यधिक कमी हुई। इसकी पूर्ति हेतु 1948 में विशेष बोर्ड की स्थापना की गई।<sup>7</sup> अतः नए नियमों तथा कानूनों के तहत भर्ती तथा नियुक्तियों के विज्ञापन जारी किए गए।

**आयु सीमा को समाप्त करना-** सरदार पटेल ने समय की स्थिति तथा मांग को ध्यान में रखते हुए आयु सीमा में छूट दी थी। उन्होंने कहा “जब तक मध्यम और वरिष्ठता बनी रहे, तब तक रिक्तियों को भरने के लिए अधिक आयु सीमा वालों की खुली प्रणाली को प्रारंभ किया जाए। सभी स्रोतों से प्रार्थना पत्र आमंत्रित किए गए।” जिसका दूसरा कारण था कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों से निकले हुए नवयुवकों को अनुभव नहीं होने के कारण उचित प्रशिक्षण देना भी आवश्यक था। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण प्राप्त उच्च पदों के लिए योग्यता प्राप्त करने से पूर्व निचले पदों पर अनेक वर्षों तक ऐसा करना अनिवार्य था।<sup>8</sup> अतः उनका उस समय लिया गया यह निर्णय मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

इसके बाद प्रशासन की सबसे बड़ी समस्या थी प्रशासन की सफलता का उत्तरदायित्व जो उनके कर्मचारियों की कार्यकुशलता, योग्यता तथा ईमानदारी पर निर्भर था। अतः यह भी आवश्यक है कि लोक सेवकों की पदोन्नति, वेतन वृद्धि, भर्ती, प्रशिक्षण हेतु निश्चित नियमों का निर्माण हो। संविधान सभा में उन्होंने उन सदस्यों की आलोचना की जो लोक सेवकों की कठिनाइयों को ध्यान में नहीं रख कर उनकी आलोचना कर रहे हैं। अखिल भारतीय सेवाओं को दी गई गारंटियों का पक्ष पोषण करते हुए उनके अधिकारों और विशेष अधिकारों की रक्षा करते हुए सरदार पटेल ने संविधान सभा में कहा कि “मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने इस कठिन समय में उनके साथ काम किया है। मैं एक भारी

उत्तरदायित्व की भावना से बोल रहा हूँ और मुझे अवश्य ही यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि देशभक्ति निष्ठा, लगन तथा योग्यता में आपको इनसे अच्छे लोग नहीं मिल सकेंगे। वह हमारे समान है, उनकी सदन या सार्वजनिक स्थान पर निंदा करना और इस प्रकार आलोचना करना स्वयं अपना और देश का अपमान करना है।”<sup>9</sup> अतः सरदार पटेल ने उनको सेवाओं की पारदर्शिता तथा सफलता का आश्वासन दिया था।

प्रशासन की कुशलता के लिए सरदार पटेल ने अखिल भारतीय सेवाओं को स्वतंत्रता व निष्पक्ष रूप से कार्य करने की सलाह दी। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा कि “लोक सेवक जनता की सहानुभूति के पात्र हैं। कुछ ही व्यक्तिसेवा में बने रहना चाहेंगे, यदि उन्हें देश का शत्रु समझा जाएगा। अतः मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरे शब्दों को महत्व देकर अपना निर्णय दे।”<sup>10</sup> सन् 1950 में जब सरदार का निधन हुआ, उस वक्त तक वे न केवल अत्यावश्यक सेवाएं जारी रख सके, बल्कि स्वतंत्रता के प्रथम संकट पूर्ण वर्षों में भारतीय उपनिवेश में अनेक धमकियों और आघातों का सामना करना पड़ा। अतः सरकार की सत्ता को भी सफलतापूर्वक स्थापित कर सके। माइक एडवर्ड्स ने सर्वथा उचित ही कहा है कि “इस विरासत में प्राप्त हुए प्रशासन तंत्र को सुरक्षित रखने के कारण स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में न केवल आवश्यक सेवाएं चालू रही, बल्कि सरकार की सत्ता भी सफलता से स्थापित हो सकी। कानून-व्यवस्था और सत्ता की स्थापना नए स्वतंत्र भारत के समक्ष खड़ा सबसे महत्वपूर्ण कार्य था और यह सरदार पटेल का भारतीय राष्ट्र के लिए बहुत ही बड़ा योगदान था।”<sup>11</sup>

**संविधान में सेवा गारंटी का समायोजन-** लोक सेवाओं के लिए संविधान में गारंटियों का समावेश कराने में सरदार पटेल की प्रमुख भूमिका रही थी। इन गारंटियों का संबंध सेवाओं की दो श्रेणियों से था। **प्रथम-**भूतपूर्व भारत मंत्री की सेवाओं के वह सदस्य जो सत्ता के हस्तांतरण के उपरांत सेवा में बने रहे थे- इस श्रेणी के प्रत्येक अधिकारी को केंद्र सरकार द्वारा उनकी सेवा के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन दिया गया। **द्वितीय-**सत्ता के हस्तांतरण के पश्चात् बनाई गई दोनों सेवाओं भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा को प्रांतीय सरकारों के सर्व सम्मत समर्थन से अखिल भारतीय सेवाओं के रूप में रचा गया।<sup>12</sup> साथ ही उन्होंने राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग बनाने में भी समुचित प्रावधान करवाए थे। अतः

हम कह सकते हैं कि प्रशासन का ताना-बाना बुनने में तथा भविष्य में सुदृढ़ प्रशासनिक नीव रखने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। इस कारण से ही सरदार पटेल को भारत में प्रशासनिक सेवाओं का जनक भी कहा जाता है।

**निष्कर्ष-** उपरोक्त तथ्यों, कथनों, अध्ययनों एवं विवरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वास्तव में सरदार पटेल भारत में प्रशासनिक सेवाओं के जनक थे। क्योंकि उन्होंने 02 सितम्बर, 1946 में अंतरिम सरकार में गृहमंत्री पद पर रहते हुए 18 अक्टूबर, 1946 में पुरानी “आई. सी. एस.” के स्थान पर नवीन “अखिल भारतीय सेवाएं” तथा “आई. पी. एस.” के स्थान पर “इंडियन पुलिस सर्विस” (भारतीय पुलिस सेवा) के गठन की मंजूरी दी। सरदार पटेल ने भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा का गठन किया। लोक सेवकों को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 की धारा 10(2) में सेवाओं के संबंध में समुचित गारंटी प्रदान की गई। उन्होंने केंद्र तथा राज्य में प्रशासनिक तथा पुलिस विभाग की सेवाओं संबंधी पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति करने का कार्य बड़ी कुशलता पूर्वक किया। अतः सरदार पटेल को भारत में प्रशासनिक सेवाओं का जनक भी कहा जाता है। अर्थात् सरदार पटेल की कुशल राजनीतिक एवं प्रशासनिक शैली के धनी थे। उनके प्रशासनिक कार्यों और राजनैतिक योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमलाल सिंह एवं सुधा सिंह, अखंड भारत के निर्माता, सरदार पटेल, आकाशदीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012 पृ.स. 79-80.
2. कुमार रविन्द्र, सरदार वल्लभ भाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991, पृ.स. 82.
3. डॉ. रविन्द्र कुमार, सरदार पटेल के प्रमुख निर्णय, कल्पाज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.स. 96.
4. कुमार रविन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.स. 86.
5. वी. शंकर, सरदार पटेल का चुना हुआ पत्र व्यवहार, भाग-2, पृ.स. 166
6. जी. एम. नान्दुरकर, सरदार-इन टियून विद दि मिलियन्स, भाग-2, अहमदाबाद, 1976, पृ.स. 124.
7. डॉ. एन. सी. मेहरोत्रा एण्ड डॉ. रंजना कपूर, सरदार वल्लभ भाई पटेल व्यक्ति एवं विचार, आत्माराम एण्ड सन्स पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012, पृ.स. 184.
8. कुमार रविन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.स. 87.
9. जी. एम. नान्दुरकर, भाग-2, पूर्वोक्त, पृ.स. 124.
10. डॉ. एन. सी. मेहरोत्रा एण्ड डॉ. रंजना कपूर, पूर्वोक्त, पृ.स. 185.
11. वी. शंकर, भाग-2, पूर्वोक्त, पृ.स. 650.
12. शरद सिंह, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.स. 179.

# शिक्षा व्यवस्था में जातिगत भेदभाव और दलित कहानी

डॉ. नितीन गायकवाड

असिस्टेंट प्रोफेसर, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

“मनुष्य के व्यक्तित्व विकास में शिक्षा की विशेष भूमिका रही है। लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था की आचार-संहिता ने शिक्षा को विशिष्ट वर्ग तक सीमित रखा है। प्राचीन काल में वेदों को धार्मिक शास्त्र घोषित करके शूद्र, अति-शूद्र और स्त्रियों को शिक्षा के मुलभूत अधिकारों से वंचित रखा है। धर्म गुरुओं ने आदेश दिया कि दलितों को वेद और शास्त्रों को पढ़ने-सुनने का बिल्कुल अधिकार नहीं है बावजूद दलितों ने वेद तथा शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करने पर अपराधी घोषित करके दंडित किया जायेगा। इसके खिलाफ प्रतिरोध की परंपरा विकसित हुई है। लेकिन ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक दौर में भी दलितों की स्थिति में परिवर्तन जितना आना चाहिए उतना आने के संकेत नहीं दिखाई देते हैं क्योंकि समय के अनुसार दलितों के शोषण का स्वरूप भी बदलता गया है और इस बदलते शोषण के स्वरूप के कारण ज्ञान की परंपरा से जुड़ने का संघर्ष दिनों-दिन मुश्किल होता जा रहा है।”

**संकेताक्षर :** वर्णाश्रम व्यवस्था, आचार-संहिता, ब्राह्मणवाद, जातिप्रथा, प्रतिरोध की संस्कृति, लोकतंत्र, आरक्षण, आंबेडकरवाद, संविधान आदि।

**शू**निया भर के विकसित देशों में शिक्षा का मनुष्य के विकास से संबंध रहा है तब भारत में शूद्र, अति-शूद्र और स्त्रियों को शिक्षित बनने पर सजा क्यों दी जाती है ? क्या इन्हें मनुष्य का दर्जा नहीं है ? शिक्षा से मनुष्य को मानवीय मूल्य हासिल होते हैं अर्थात् बगैर शिक्षा के मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। इतिहास गवाह है कि शिक्षा को हासिल करने के लिए शूद्र, अति-शूद्र और स्त्रियों ने क्या कुछ नहीं सहा है। शिक्षा और मनुष्य के संबंधों का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में- “हमें सभी पुरानी आदतों, विचारों और प्रथाओं पर प्रश्न उठाने चाहिए। शिक्षा से नए युवाओं को उत्साहित होना चाहिए कि वे अध्यापक से प्रति दिन एक नया प्रश्न करें...।” बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का कहना तर्कसंगत है कि मनुष्य को सोचने-समझने की दिशा शिक्षा से ही मिलती रही है। मनुष्य को अपने सोच-विचार की ऊर्जा का उपयोग अलोकतांत्रिक मूल्यों-मान्यताओं, धारणाओं और प्रथाओं पर सवाल उठाने में करना चाहिए। लेकिन हिंदू समाज में किसी दलित द्वारा शिक्षक से सवाल करने के साहस की सजा क्या होती है इसका उदाहरण ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ‘जूटन’ में दर्ज है। साथ ही शिक्षा को हासिल करने का संघर्ष श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ की आत्मकथा ‘मेरा बचपन मेरे कंधों पर’ में दर्ज है।

धर्म ग्रंथों के आदेशों से दलितों की पढ़ाई-लिखाई यानि शिक्षा का विरोध क्यों किया गया है ? इन आदेशों के पीछे का तर्क क्या है ? इन सवालों का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में इस प्रकार है- “पढ़ाई-लिखाई का वेदों के अध्ययन तथा शिक्षा से स्वाभाविक संबंध है। पढ़ाई-लिखाई उन लोगों के लिए एक आवश्यक चीज थी, जिन्हें वेदों के अध्ययन का विशेष अधिकार था और वे इस अध्ययन के लिए मुक्त थे। जिन्हें वेदों के पढ़ने का अधिकार नहीं था, उनके लिए पढ़ाई-लिखाई आवश्यक नहीं थी। इस प्रकार से शिक्षा वेदों के अध्ययन का एक निमित्त बन गई। नतीजा यह हुआ कि वेद के अध्ययन तथा शिक्षा से संबंधित सिद्धांत पढ़ाई-लिखाई की कला पर भी लागू हो गया। जिन लोगों को वेदों के अध्ययन का

अधिकार था, उन लोगों को ही पढ़ने-लिखने का अधिकार प्राप्त हुआ। जिन लोगों को वेदों के अध्ययन का अधिकार नहीं था, उन लोगों को पढ़ने-लिखने के अधिकार से भी वंचित रखा गया। इस प्रकार यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि मनु के विधान के अनुसार पढ़ना-लिखना केवल कुछ मुट्ठी-भर ऊँचे वर्णों का अधिकार बन गया और निरक्षरता उन अनेक नीचे वर्णों का भाग्य बन गई।”<sup>2</sup> हिंदू समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था में शिक्षा का अधिकार केवल ऊँचे वर्णों के लोगों तक सीमित रहा है। इन ऊँचे वर्णों के लोगों को वेदों को सुनने और पढ़ने की मनाई नहीं थी। लेकिन जिन लोगों को वेदों को सुनने और पढ़ने की सख्त मनाई थी उन्हें शिक्षा ग्रहण करने का बिल्कुल भी अधिकार नहीं था। इसका मतलब साफ था कि वेदों की धार्मिक आचार-संहिता को हथियार बनाकर दलितों को शिक्षा से दूर रखने की साजिश रची हुई थी।

दलितों को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए और अस्मिता के विकास को गतिशील बनाने के लिए किन बातों पर ध्यान देना अनिवार्य है? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में—“अनिवार्यतः अस्पृश्यों को क्या प्रयास करना चाहिए? दो बातों के लिए उन्हें प्रयास करना ही होगा, और वे हैं शिक्षा और ज्ञान का प्रसार। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की शक्ति उस झूठ की बैसाखी पर टिकी रहती है, जिसका प्रचार-प्रसार वे बड़ी लगन व जतन से करते हैं। जब तक शक्ति को मान्यता प्रदान करने वाले झूठ को सच स्वीकार कर लिया जाएगा, तब तक शक्ति का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। जब तक बचाव के सर्वोपरि तथा प्रमुख कवच झूठ का भांडा नहीं फोड़ा जाएगा, तब तक कोई विद्रोह ही नहीं सकता। इस से पूर्व कि किसी अन्याय किसी कुरीति या दमन का प्रतिरोध किया जा सके, यह अति आवश्यक है कि उस के मूलाधार झूठ को बेनकाब करके उसे भलीभाँति पहचान लिया जाए। यह केवल शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है।”<sup>3</sup> दलितों को अपने ऊपर हो रहे अन्याय का विरोध करने के लिए सही दिशा में संघर्ष करना होगा। साथ ही बगैर शिक्षा के यह सशक्त प्रतिरोध की संस्कृति का विकसित होना असंभव है। क्योंकि शिक्षा ही मनुष्य को सही और झूठ के बीच में फर्क क्या है, इस की सोच-समझ विकसित करने में सहयोग करती है। जब तक सही और झूठ का पता ही नहीं चलेगा तब तक किस का और क्यों विरोध करना है यह निर्णय लेने की क्षमता कैसे हासिल होगी।

इतिहास गवाह है कि दलितों ने शिक्षा को आत्मसात

करने के लिए किन-किन मुसीबतों और मुश्किलों का सामना किया है। जाति और गरीबी के कारण दलितों के लिए शिक्षा हासिल करना कितना कठिन रहा है इस का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में—“अस्पृश्यों को इस स्थापित व्यवस्था के अंतर्गत पढ़ने-लिखने का कोई अधिकार नहीं है और गाँव के स्कूल में दाखिला लेने का तो निश्चित ही कोई अधिकार नहीं है। जिन अस्पृश्यों ने स्थापित व्यवस्था को तोड़ने का साहस किया है, उन्हें हिंदुओं ने कड़ी सजा दी है।”<sup>4</sup> शिक्षा के माध्यम से ही दलितों को दुःखों से मुक्ति मिल सकती है। इसलिए ब्राह्मणवाद दलितों को शिक्षा लेने पर सख्ती से पेश आते हुए दिखाई देता है। हिंदू समाज में दलित देवी-देवताओं के मंदिर और शिक्षा के मंदिर इन दोनों जगहों से सदैव बहिष्कृत रहे हैं। लेकिन दलितों ने आज हिंदू समाज के देवी-देवताओं के मंदिरों को क्यों नकार दिया है? देवी-देवताओं के मंदिर और ज्ञान के मंदिर इन दोनों जगह से मनुष्य को क्या हासिल होता है? राजेन्द्र यादव के शब्दों में—“देवताओं के मंदिर हमारी यात्राओं के ‘अंत’ होते हैं, ज्ञान के मंदिर नई यात्राओं के प्रस्थान-बिंदु।”<sup>5</sup> इसीलिए दलितों ने मंदिरों को नकार कर और शिक्षाओं के मंदिरों को स्वीकार किया है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की प्रेरणा से दलितों ने अपने जीवन में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। हजारों सालों से शिक्षा के अभाव में दलितों की जिंदगी उदास और दिशाहीन रही है। एक शिक्षित ब्राह्मण और तथाकथित सवर्ण और एक अशिक्षित दलित इन दोनों के बीच अनेक दृष्टि अंतर से स्पष्ट ढंग से दिखाई देते हैं। वस्तुतः एक शिक्षित मनुष्य अपने जीवन को जितनी सहजता और सरलता से विकास की दिशा में मोड़ सकता है यह बात दूसरे अशिक्षित मनुष्य के लिए उतनी ही मुश्किल साबित होती है। हिंदू समाज की आचार-संहिता के आदेशों के कारण शिक्षा शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों के लिए वर्जित रही है। इन्हें केवल अक्षर अध्ययन के लिए मनाई नहीं थी बल्कि अध्यापन पर भी पाबंदी रही है। वैसे भी स्वयं शिक्षित हुए बगैर दूसरों को कैसे शिक्षित किया जा सकता है। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौर से शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा की पाबंदी से कुछ राहत मिलने के संकेत दिखाई देते हैं। इस से पहले शिक्षा ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय समाज के लोगों तक ही सीमित रही है। इस में भी इस समाज की स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखा गया है। हिंदू समाज में केवल पुरुषों के लिए ही शिक्षा को ग्रहण करने की स्वीकृती रही है।

भारत में बौद्ध कालीन दौर की सामाजिक संरचना में मानवीय विकास के प्रत्येक क्षेत्र में लोकतंत्र दिखाई देता है, क्योंकि बौद्धों ने सामाजिक न्याय, समता, स्वतंत्रता और भाईचारे को प्राथमिकता दी थी। बौद्ध कालीन दौर में शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार समाज के सभी स्तर के लोगों को समान रूप से प्राप्त था। सम्राट अशोक ने 84000 बुद्ध विहारों का निर्माण करवाया था। साथ ही नालंदा, विक्रमशिला और तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयों की स्थापना की थी। इन बौद्ध विहारों और विश्वविद्यालयों में से ऊँच-नीच अथवा स्त्री-पुरुष का भेदभाव न करते हुए शिक्षा को समान रूप से देने की कोशिश की गई। लेकिन बौद्ध धम्म के पतन के पश्चात् समाज अनेक जातियों व उपजातियों में विभाजित हुआ। इसके कारण अध्ययन और अध्यापन का क्षेत्र भी इस से अछूता नहीं रहा। अध्ययन और अध्यापन का कार्य विशिष्ट वर्ण और वर्ग के लोगों तक ही सीमित रह गया। बौद्ध धम्म के पतन की शुरुआत ब्राह्मणवाद की घुसपैठ से हुई है। ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत सत्ता और स्वार्थ के उद्देश्य से समाज को वर्ण और जाति के नाम पर विभाजित किया। ब्राह्मणों ने इस विभाजन की राजनीति में स्वयं को सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि घोषित किया। साथ ही शिक्षा को भी अपने वर्ग के लोगों तक सीमित रखने की पुरजोर कोशिश की। इस दौर में हिंदुओं के गुरुकुल और मुस्लिमों के मदरसों में शिक्षा का कार्य चलता था। लेकिन हिंदुओं के गुरुकुलों और मुस्लिमों के मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा का दायरा धार्मिकता तक ही सीमित था। इस धार्मिक शिक्षा के कारण समाज दिनों-दिन संकीर्ण सोच और समझ वाला बनता चला गया। लेकिन गुरुकुलों तथा मदरसों की शिक्षा पद्धति में दलित-अस्पृश्य और गरीब लोगों के बच्चों को प्रवेश वर्जित क्यों किया गया? क्योंकि इन के धर्म और धर्म ग्रंथों में दलित-अस्पृश्य व गरीब जातियों के बच्चों के लिए शिक्षा देना अनुचित और धर्म विरोधी घोषित किया गया था।

ब्रिटिश काल में ज्योतिबा फुले ने शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए स्कूल खोले थे। शोषित और उपेक्षित समाज को शिक्षा का महत्त्व समझाने के उद्देश्य से 'गुलामगिरी' और 'किसान का कोड़ा' आदि किताबों का लेखन किया था। दलितों को अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के प्रति ज्योतिबा फुले साफ कहते थे कि यह शिक्षा व्यावहारिक तथा तकनीकी शिक्षा नहीं है, बल्कि केवल लिपिक और अध्यापकों का भारी मात्रा में

निर्माण करने तक सीमित है। इस शिक्षा का मानवीय व्यक्तित्व के विकास में बहुत ही कम उपयोग होगा। दलितों को किस प्रकार की शिक्षा से मुक्ति हासिल होगी इस पर ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के विचार बेहद सराहनीय रहे हैं। बेशक, इनके विचारों के कारण दलित और उत्पीड़ित जातियों व जनजातियों के लोगों को शिक्षा हासिल करने का अवसर मिला। दलितों को शिक्षा का मिला यह अवसर उनके जीवन में परिवर्तन की एक उम्मीद की किरण की तरह दिखाई देता है।

हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के केंद्रीय विषयों में से एक विषय शिक्षा संस्थाओं में दलित छात्रों और अध्यापकों के साथ होने वाली अनेक तरह की ज्यादतियों की घटनाओं को दर्ज किया है। विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के परिवेश में दलित छात्रों को गैर-दलित छात्रों के हाथों-लातों से थपड़ या घूसों के प्रहार और बातों से अपमानित होकर आदि दोनों हथियारों से बचने की नाकाम कोशिश करनी पड़ती है। साथ-साथ विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालयों के ब्राह्मण और तथाकथित सवर्ण शिक्षकों का व्यवहार भी बेहद शोचनीय दिखाई देता है। दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के परिवेश में दलित और गैर-दलितों के बीच के संबंधों के सच को बेनकाब करने की कोशिश इस प्रकार की है-

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिये' कहानी तीन मुद्दों पर केंद्रित है-1. आरक्षण का विरोध, 2. शिक्षा व्यवस्था में सवर्णों की सत्ता, और 3. दलित छात्रों और शिक्षकों का शिक्षा संस्थानों में सवर्ण छात्रों और शिक्षकों द्वारा मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न। मेडिकल कॉलेज में एक दलित छात्र की आत्महत्या से शहर भर में मातम छा जाता है। निराशा और हताशा से लबरेज अमरदीप कहता है-"सर! हम लोग बहुत बड़ी परेशानी में हैं...समझ में नहीं आ रहा है क्या करें?...मेडिकल कॉलेज के जो हालात हैं, उस में हमारे लिए पढ़ाई जारी रखना दिन-प्रतिदिन कठिन हो रहा है। एक साल हमने जिन यातनाओं के साथ गुजारा है...हम ही जानते हैं। कई बार तो लगता था पढ़ाई छोड़ कर वापस लौट जाऊँ...लेकिन माँ-बाप की उम्मीदें रास्ता रोककर मजबूर कर देती हैं। उन सब यातनाओं के साथ पढ़ाई जारी रखना...बहुत तकलीफदेह है...एक रोज तो मैंने आत्महत्या तक करने का निश्चय कर लिया था।"<sup>6</sup> छात्रावास जीवन के

पीड़ादायक दिनों को याद करते हुए नितीन मेश्राम कहता है—“होस्टल नं. एक में कमरा एलॉट हो जाने के बाद भी किसी दलित छात्र को उस में घुसने नहीं दिया जाता है। घूम-फिरकर होस्टल नं. दो में ही दलित छात्रों को रखा जाता है। यही स्थिति गर्ल्स होस्टल की भी है। वहाँ भी सभी दलित लड़कियाँ एक ही होस्टल में रहती हैं। कॉलेज मैनेजमेंट को ये समस्याएँ गंभीर नहीं लगती। उन्हें लगता है दलितों के लिए मेडिकल में आना अतिक्रमण करना है। जब उन से शिकायत करते हैं तो ध्यान ही नहीं देते।”<sup>7</sup> तथाकथित सवर्ण छात्र किसी भी भंगी और चमार जैसी निम्न कही जाने वाली जाति के छात्रों के साथ अपना रुम शेयर नहीं करते हैं। जातीय अहम के कारण इस बात के लिए हर्गिज तैयार नहीं थे कि कोई दलित भी उनके साथ शिक्षा संस्थानों में साथ रह कर ज्ञान को हासिल कर सकें। ऐसे माहौल में किसी भी दलित छात्र के लिए अपनी पढ़ाई में एकाग्रता लाना बेहद मुश्किल है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ कहानी में गरीब दलित मजदूर की निरक्षरता का फायदा गाँव का जमींदार कैसे उठाता है इसे चित्रित किया गया है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मनुष्य का विकास शिक्षा पर ही निर्भर रहा है। स्कूल और कॉलेज में दलित बच्चों के प्रति सवर्ण शिक्षकों के विचार और व्यवहार किस तरह के रहे हैं? इस का एक प्रसंग ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी ‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ में देखा जा सकता है। मास्टर शिवनारायण ने पच्चीस की गिनती करने के लिए सुदीप से जब कहा तब वह गिनती शुरू करते ही पच्चीस चौका सौ या डेढ़ सौ इस उलझन में फँस जाता है। फँसने का कारण भी साफ था। मास्टर शिवनारायण मिश्रा कुर्सी पर पैर रख कर उकड़ू बैठे थे। बीड़ी का सुट्टा मारते हुए बोले—“अबे! चूहड़े के, आगे बोलता क्या, नहीं? भूल गया क्या? सुदीप ने फिर पहाड़ा शुरू किया। स्वाभाविक ढंग से पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहा। मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने डांट कर कहा, ‘अबे! कालिये, डेढ़ सौ नहीं सौ...सौ!’

सुदीप ने डरते-डरते कहा, ‘मास्साहब! पिताजी कहते हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवे हैं।’

मास्टर शिवनारायण हत्थे से उखड़ गया। खींच कर एक थप्पड़ उसके नाम पर रसीद किया। आँखें तरेरकर चीखा, अबे, तेरा बाप इतना बड़ा बिदवान है तो यहाँ क्या अपनी माँ (एक क्रिया—जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं) आया है। साले, तुम लोगों को चाहे कितना भी

लिखाओ, पढ़ाओ रहोगे वहीं—के—वहीं...दिमाग में कूड़ा—करकट जो भरा है। पढ़ाई—लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते। चल बोल ठीक से... पच्चीस चौका सौ...स्कूल में तेरी थोड़ी—सी तारिफ क्या होने लगी, पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। ऊपर से जबान चलावे है। उलटकर जवाब देता है।”<sup>8</sup> शिक्षक का यह व्यवहार एक बच्चे की पढ़ाई पर कैसा प्रभाव डाल सकता है यह सवाल इस कहानी में उठाया है।

जयप्रकाश कर्दम की ‘मोहरे’ कहानी एक दलित शिक्षक के खिलाफ ब्राह्मण शिक्षक के द्वारा झूठे आरोप में फंसाने की साजिश पर से पर्दा उठाती है। सत्यप्रकाश एक निष्ठावान और समर्पित शिक्षक है। अपने पेशे के प्रति उसके मस्तिष्क में सदैव यह बात रहती थी कि वह एक शिक्षक है। उसका कर्तव्य बच्चों को ठीक से शिक्षित करना है। बच्चे आने वाला कल है, वे राष्ट्र के भविष्य हैं। आज वे अच्छी शिक्षा प्राप्त करेंगे तो कल को बेहतर ढंग से समाज और देश को संभालेंगे। सत्यप्रकाश की शिक्षक के रूप में अपने स्कूल में ही नहीं पूरे डिस्ट्रिक्ट में सम्मानजनक इमेज थी। वह स्कूल के प्रिंसिपल और दूसरे अधिकारियों की चापलूसी और सेवा के प्रति कभी समर्पित नहीं रहा। जिस स्कूल में सत्यप्रकाश पढ़ाता है, वहाँ उम्र और नौकरी दोनों दृष्टियों से काफी वरिष्ठ और अनुभवी शिक्षक सत्यप्रकाश को अपने विचारों से भटकाने में कामयाब हो जाते हैं। लेकिन एक दिन जवाहर नगर कच्ची कालोनी की बस्ती में ब्रह्म सिंह जैसे सामाजिक कार्यकर्ता के भाषण से प्रभावित होकर पुनः अपने मार्ग पर वापस लौटता है। गाँव हो या शहर दोनों जगह सरकारी स्कूलों की स्थिति बेहद शोचनीय दिखाई देती है। इन स्कूलों में ज्यादातर दलित समाज के ही बच्चे पढ़ाई करने जाते हैं।

निर्धनता, साधनहीनता और निरक्षरता के कारण दलित परिवारों के बच्चों को सरकारी स्कूलों की असुविधाजनक स्थितियों में पढ़ाना मजबूरी रही है, क्योंकि—“गैर—दलित अध्यापक दलित बच्चों को पढ़ाने के प्रति गंभीर नहीं हैं। वे नहीं चाहते कि दलित बच्चे पढ़-लिखकर कामयाब हों। इसलिए वे हमारे बच्चों को पढ़ाने में रुचि नहीं लेते हैं। हमारा शिक्षित होना उस के लिए चुनौती बन सकता है, वे इस बात को अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए पढ़ाने की बजाए वे उल्टे उन्हें हतोत्साहित करते हैं। बाबा साहेब आंबेडकर के लंबे संघर्ष और त्याग का फल है कि आप लोग पढ़-लिखकर सरकारी नौकरी में हैं। यदि आप लोग

चाहते हैं कि हमारा समाज तरक्की करे, हमारे समाज के बच्चे पढ़-लिखकर आगे बढ़े तो आप लोगों को नौकरी की भावना से ऊपर उठकर इन बच्चों में पढ़ाने के लिए अतिरिक्त दायित्व अपने ऊपर लेना होगा।”<sup>9</sup> सत्यप्रकाश के मन में समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना जागृत होती है। मनोज पढ़ने-लिखने से जी चुराने वाला व दूसरे पढ़ने वाले छात्रों के साथ भी छेड़छाड़ तथा शरारत करने वाला था। यह शरारत और छेड़छाड़ करने वाली हरकत सत्यप्रकाश को अखरती थी। छात्र अपना समाय बर्बाद न करें इसलिए सत्यप्रकाश ने मनोज को चांटा बहुत जोर से नहीं मारा था और न ही उस की बांह को किसी तरह मरोड़ा या ऐंठ था कि उस से मनोज को बहुत तकलीफ हुई हो। लेकिन सत्यप्रकाश की स्कूल में प्रतिष्ठा और छात्रों के बीच इज्जत से चिड़ने वाले दूसरे शिक्षक रामदेव त्रिपाठी ने उस लड़के के घर जाकर उस के पिता को भड़काया।

रामदेव त्रिपाठी ने अपनी खुंदक निकालने के लिए सत्यप्रकाश के खिलाफ इस घटना का एक हथियार कि तरह इस्तेमाल किया। मनोज इस बात पर मौन था क्योंकि वह जानता था सच बोलने पर रामदेव त्रिपाठी से स्कूल में बचना मुश्किल है। रामदेव त्रिपाठी मनोज के पिता को डिप्टी डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन से इस की शिकायत करने ले जाता है। इस इन्क्वायरी में रामदेव त्रिपाठी और दूसरे अध्यापकों ने अपने बयानों में स्पष्ट कहा कि वे इस घटना के चश्मदीद गवाह हैं, उन्होंने अपनी आँखों से सत्यप्रकाश मास्टर को बेरहमी से मनोज को पीटते हुए देखा था। इस पर सत्यप्रकाश को लिखित चेतावनी दी। कुछ ही दिनों में उसका जाटों के गाँव में तब्दाला हुआ। जहाँ छात्रों से लेकर उनके अभिभावक तक, सब शिक्षकों से तू-तड़ाक से बात करते हैं। सत्यप्रकाश जिनके बच्चों का भविष्य बनाने के लिए पूरे मनोयोग और निष्ठा से जुटा था उस समाज के लोग दूसरों के हाथ के मोहरे बन गये थे। ऊँच-नीच और छुआछूत के भेदभाव से मुक्त होकर मानवीय मूल्यों के प्रति तटस्थ दृष्टि से सोचना सवर्णों के लिए आवश्यक है। कॉलेज के शिक्षक दलित और गैर-दलित छात्रों के बीच भेदभाव करते थे। पढ़ाई में कोई दलित ब्राह्मणों से आगे निकल जाये यह बात ब्राह्मणों की परंपरा के खिलाफ थी। इस परंपरा को बनाए रखने के लिए विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय के ब्राह्मण शिक्षक दलित छात्र के साथ षड़यंत्र रचते हैं। लेकिन इस षड़यंत्र को

दलित छात्र अपनी मेहनत और बौद्धिक क्षमता से उलट देता है। शिक्षा व्यवस्था में फैले जातिगत भेदभाव और भ्रष्टचार को इस कहानी में चित्रित किया है।

जब से दलितों को शिक्षा का महत्त्व समझ में आने लगा था, तब से शिक्षा के क्षेत्र में दलितों का दर्शन हिंदुओं के गुरुकुल और मुस्लिमों के मदरसों से अलग और विशिष्ट दिखाई देता है। ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा दी हुई प्रेरणा और प्रोत्साहन से दलितों ने अपने जीवन में तर्क और विवेक-बुद्धि के बल पर आधारित वैज्ञानिक और व्यवहारिक शिक्षा को महत्त्व देना शुरू किया है। डॉ. धर्मवीर के शब्दों में-“शिक्षा के क्षेत्र में भी दलितों का अपना एक दर्शन ठहरता है। इस क्षेत्र में दलितों का हित अपने आप नहीं हो जाएगा। इसके लिए एक सुविचारित दृष्टि की आवश्यकता है। सब से पहली बात यही है कि दलितों को लौकिक शिक्षा चाहिए। इन के विषय कला, विज्ञान और समाज विज्ञान हैं। ये लोग श्रमिक होते हैं, इसलिए इन्हें भाग्यवादी फलित ज्योतिष का ज्ञान रखने की कोई जरूरत नहीं है। इन्हें वेद-वेदांग पढ़ने से कुछ मिलने वाला नहीं है। देवताओं की स्तुति से इनका कोई सुफल नहीं सधता। इन्हें मेडिकल और इंजीनियरिंग शिक्षा पर जोर देना है। इनकी विश्व दृष्टि वेद के पुरुषसूक्त को कंठस्थ करने से नहीं, बल्कि गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान और वनस्पति विज्ञान के आधार पर निर्मित होगी। ये भूगोल और खगोल के मालिक बनना चाहते हैं।...माध्यम के रूप में दलित लोग ज्ञान को जन भाषाओं से जोड़ना चाहते हैं। ये शिक्षा को दुरुह बनाना नहीं चाहते। ये अपने देश में विदेशी भाषाओं के प्रचलन को अच्छा नहीं समझते इन्होंने संस्कृत को जन भाषाओं की दुश्मन भाषा माना है। ये अपनी देशी भाषाओं को विकसित करना चाहते हैं। इनकी भाषाओं के देशी बोल संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों से भिन्न ‘देशज’ हैं। लेकिन दूसरे लोग शिक्षा को अनावश्यक रूप से महँगी कर उसे दलितों के लिए अनुपलब्ध रखना चाहते हैं। वे अपनी अयोग्य संतान को विदेशी भाषाओं की ए. बी. सी. डी. पढ़ा कर उन्हें दलितों के बच्चों के मुकाबले में फर्जी रूप से योग्य सिद्ध करने पर तुले रहते हैं। दलित शिक्षा सिद्धांत मानता है कि अपनी भाषाओं की उपेक्षा कर विदेशी भाषाएँ पढ़ने पर ऐसे पढ़े-लिखे बच्चे विदेशी हो जाते हैं, परंतु गुणवान और योग्य नहीं। दलित शिक्षा का दर्शन विदेशी भाषा के आधार पर खड़ी की गई ‘मेरिट’ के विरुद्ध लड़ता है।”<sup>10</sup>

डॉ. धर्मवीर के अनुसार दलित को अपने विकास के लिए शिक्षा को सख्ती के साथ स्वीकारना होगा। क्योंकि बगैर शिक्षा को हासिल किए अपने दुःखों से मुक्ति पाना दलितों के लिए बेहद मुश्किल है। डॉ. धर्मवीर दलितों को इस बात से भी सचेत करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में अपने हित की बातों को स्वयं विकसित करना होगा क्योंकि दूसरों पर निर्भर रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं है।

संक्षेप में, ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिये', 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ और जयप्रकाश कर्दम की 'मोहरे' आदि दलित कहानियों में गाँव-देहातों और शहरों में शिक्षा, शिक्षा पद्धति और शिक्षा संस्थानों की वास्तविकता का वर्णन किया गया है। जिद्दी दलित शिक्षक और छात्रों की शिक्षा व्यवस्था में जाति के कारण सहे अन्याय को और उस के खिलाफ किए संघर्षों को चित्रित किया है। सदियों से लेकर आज तक दलित समाज शिक्षा से क्यों दूर रहा है ? या उन्हें किन साजिशों के तहत शिक्षा से वंचित रखा गया है ? और अशिक्षित होने के कारण दलित जिस शोषण को सह रहा था उस शोषण का स्वरूप कैसा रहा है ? साथ ही शिक्षा की स्थिति को लेकर उपरोक्त दलित कहानियों में सवालियों को उठाया है। जब जाति के दंश समाज में मौजूद है तब उस दंश के कारणों पर चर्चा करना आवश्यक है। क्योंकि जाति हमारे समाज के विकास में बाधक रही है। इसे जड़ से उखाड़ने के लिए शिक्षा के माध्यम से कोशिशें होनी चाहिए। लेकिन शिक्षा और कक्षा में इन विषयों को विकल्प के रूप में क्यों देखा जाता है ? जबकि इन्हीं विषयों पर शिक्षा और कक्षा में मूलतः विचार-विमर्श होना चाहिए। कॉलेज के गैर-दलित शिक्षक स्वामी और दलित शिक्षक के बीच का संवाद शिक्षा व्यवस्था के दोहरे चेहरे को इस प्रकार से बेनकाब करता है और दलित शिक्षक का अपने व्यक्तित्व और विचार-व्यवहार से छात्रों के बीच प्रिय होना गैर-दलित शिक्षकों को अच्छा नहीं लगता है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रतू नानक चंद (संपादक)-बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर : संस्मरण और स्मृतियाँ, सम्यक प्रकाशन, 32/3, पश्चिमपुरी, नयी दिल्ली-110 063, संस्करण द्वितीय हिंदी-2002, पृ. 141
2. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब-हिंदुत्व का दर्शन, संपूर्ण वाङ्मय, खंड-6, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली-110 001, चौथा संस्करण-2013, पृ. 65
3. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब-अस्पृश्यों का विद्रोह, गाँधी और उनका अनशन पूना पैक्ट, संपूर्ण वाङ्मय, खंड-10, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली-110 001, चौथा संस्करण-2013, पृ. 328
4. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब-अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी, संपूर्ण वाङ्मय, खंड-9, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली-110 001, चौथा संस्करण-2013, पृ. 71
5. यादव राजेन्द्र-खामोश, चिंतन चालू आहे!, खंड-5, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002, प्रथम संस्करण-1998, पृ. 59
6. वाल्मीकि ओमप्रकाश-घुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि., जी-17, जगतपुरी, नयी दिल्ली-110 051, प्रथम संस्करण-2003, पृ. 15
7. वही, पृ. 17
8. वाल्मीकि ओमप्रकाश-सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जी-17, जगतपुरी, नयी दिल्ली-110 051, प्रथम संस्करण-2000, पृ. 25
9. कर्दम जयप्रकाश-तलाश, विक्रम प्रकाशन, ई-11/5, कृष्णनगर, दिल्ली-110 051, प्रथम संस्करण-2005, पृ. 52
10. डॉ. धर्मवीर-दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर, वाणी प्रकाशन, 21-ए, नयी दिल्ली-110 002, संस्करण-2008, पृ. 144-45

# भारत में संसदीय शासन-व्यवस्था की अवधारणात्मक : एक मूल्यांकन



www.shodhshree.com

कमला सेसमा

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

लगभग 200 वर्षों की गुलामी के पश्चात् भारत ने ब्रिटिश दासता से छुटकारा पाया और इसी के साथ एक नये अध्याय की शुरुआत हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सभी ने कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया था और सम्पूर्ण भारतवर्ष की जनता की सामूहिक आहुति से स्वतन्त्रता का यह महायज्ञ सम्पन्न हुआ था। अतः नव स्वतंत्र भारत में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो सके, अतः उसके लिए केवल लोकतंत्र ही एकमात्र उचित राह थी। अतः अब तत्कालीन राजनेताओं, नीति निर्माताओं, शासन विद्वानों और संविधान विशेषज्ञों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किस प्रकार की शासन व्यवस्था को अपनाया जाए? सभी के मानस पर एकमात्र विकल्प उभरकर आया और वह संसदात्मक शासन प्रणाली था। अतः भारत में संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया।

**संकेताक्षर :** सामूहिक उत्तरदायित्व, संसदात्मक शासन प्रणाली, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, लोकतंत्र, गठबंधन सरकार, मंत्रिमण्डलात्मक सरकार।

**भा**रत में नये गणराज्य के संविधान का शुभारंभ 26 जनवरी, 1950 को हुआ और भारत अपने लंबे इतिहास में प्रथम बार एक आधुनिक संस्थागत ढाँचे के साथ पूर्ण संसदीय लोकतंत्र बना। भारत की राजनीतिक व्यवस्था को, या सरकार जिस प्रकार बनती और चलती है, उसे संसदीय लोकतंत्र कहा जाता है। संसद भारतीय राजनीति की धुरी है। वह राष्ट्रपति और संसद के दोनों सदनों-राज्यसभा तथा लोकसभा-से मिलकर बनती है, संसद में जनता की प्रभुसत्ता का समावेश एवं सार है। वह राष्ट्र की आवाज है और उसका दर्पण है। संसद जिन शक्तियों का प्रयोग करती है, जनता की ओर से करती है। संविधान की उद्देशिका में यह पूरी तरह स्पष्ट किया गया है कि संपूर्ण शक्ति का अंतिम स्रोत भारत के लोग हैं।<sup>1</sup> द्वितीय विश्व युद्ध के पहले का समय साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का काल था। इस समय साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद अपने चरम पर था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, पुर्तगाल आदि देश इस साम्राज्यवादी नीति के पोषक व सूत्रधार थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले ब्रिटेन विश्व की महाशक्ति था।<sup>2</sup>

भारत दो सौ से भी अधिक वर्षों तक ब्रिटेन का गुलाम और उससे प्रभावित रहा अतः ब्रिटेन व्यवस्था का प्रभाव भारतीय समाज पर आना स्वाभाविक था। इसी के साथ ही एक नये अध्याय की शुरुआत हुई। अतः तत्कालीन नेताओं ने संसदीय शासन व्यवस्था को उपयुक्त माना। भारत विश्व का सबसे बड़ा और महान लोकतांत्रिक राज्य है। विश्व में लोकतंत्र के उदाहरण में भारत सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। यदि ब्रिटिश लोकतंत्र, लोकतंत्र का जनक और ब्रिटिश संसद तथा संसदात्मक व्यवस्था इस पद्धति की जनक है तो भारतीय लोकतंत्र और भारतीय संसदीय प्रणाली इस व्यवस्था का आदर्श (मॉडल) है।

संसदात्मक शासन वह शासन प्रणाली है जिसमें वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल व्यवस्थापिका अथवा उसके लोकप्रिय सदन के प्रति तथा अन्तिम रूप में निर्वाचक मण्डल के प्रति अपनी राजनीतिक नीतियों तथा कार्यों के लिये कानूनी रूप से उत्तरदायी होती है और राज्य का प्रधान नाममात्र का तथा अनुत्तरदायी होता है। गैटल का मानना है कि “संसदात्मक

शासन सरकार के उस रूप को कहते हैं जिसमें प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् अर्थात् वास्तविक कार्यपालिका अपने कार्यों के लिये कानूनी दृष्टि से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती हैं क्योंकि आधुनिक राज्यों में व्यवस्थापिका के दो सदन होते हैं, अतः मंत्रिमण्डल वास्तव में उस सदन के नियंत्रण में होता है जिसमें वित्तीय मामलों में अधिक शक्ति प्राप्त होती है और जो निर्वाचकों का भी अधिक सीधे ढंग से प्रतिनिधित्व करता है।<sup>3</sup>

संसदात्मक सरकार में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच गहरा संबंध रहता है, अर्थात् सरकार के दोनों अंगों में समन्वय हो जाता है। संसदीय शासन व्यवस्था में व्यवस्थापिका में बहुमत दल के नेता को कार्यपालिका का मुख्य अधिपति नियुक्त किया जाता है। और वही व्यक्ति प्रधानमंत्री कहलता है। (भारत व ब्रिटेन में ऐसा है) प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों या मंत्रिपरिषद् का चयन स्वयं करता है। इस सरकार में मंत्रिमण्डल अथवा मंत्रिपरिषद् व्यवस्थापिका सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। मंत्रिमण्डल सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और वे अपने पद पर तब तक आसीन रहते हैं जब तक उन्हें व्यवस्थापिका सभा का विश्वास रहे। प्रत्येक मंत्री अपना विशेष विभाग जो उसके अधीन होता है, के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है, किन्तु नीति संबंधी विषयों पर सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायित्व रहता है। इसलिये संसदीय व्यवस्था में मंत्रियों का व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बना रहता है। व्यवस्थापिका को यदि मंत्रिमण्डल आवश्यक समझे तो समयवधि के पूर्व भी भंग कर सकता है। संसदीय सरकार को सभात्मक अथवा उत्तरदायी अथवा मंत्रिमण्डलात्मक सरकार भी कहते हैं। “इंग्लैंड की सरकार को संसदीय प्रणाली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।” 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहीं संसदीय प्रणाली का बीजारोपण हुआ।<sup>4</sup>

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में संसद की कुछ मौलिक भूमिकाएँ हैं। मंत्रिपरिषद् संसद के निम्न सदन अर्थात् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। संसद प्रशासन पर निगरानी रखती है, उससे किसी भी विषय पर जानकारी प्राप्त कर सकती है। वह जनता की शिकायतें व्यक्त करती है और उन शिकायतों के निवारण का प्रयत्न करती

है। संसद कानून बनाती है, संघर्षों का समाधान करती है, राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित करती है तथा राष्ट्र को सामाजिक और आर्थिक उत्थान की राह दिखाती है।

किसी देश में संसदीय प्रणाली से सर्वोत्तम परिणाम तब प्राप्त होते हैं जब वहां दो दलीय प्रणाली प्रचलित हो। ऐसी हालत में प्रायः राष्ट्रीय नीति के बारे में व्यापक सहमति पैदा हो जाती है और दोनों प्रमुख दल उसे कार्यान्वित करने में पूर्ण तत्परता और कार्यकुशलता दिखाने के लिये परस्पर प्रतिस्पर्धा करते हैं और जनता का समर्थन होता है दूसरा दल न केवल प्रभावशाली विपक्ष की भूमिका निभाता है, बल्कि वैकल्पिक सरकार बनाने के लिये भी निरन्तर तैयार रहता है।<sup>5</sup>

अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है। अमरीका में अध्यक्षीय शासन प्रणाली है। वहां राष्ट्रपति कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है, वही अपने मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों को मनोनीत करता है और सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तरदायी होता है। मंत्रिमण्डल के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं रहते हैं और इस प्रकार यदि राष्ट्रपति अमरीकी कांग्रेस से अपनी सदस्यता का त्यागपत्र देना पड़ता है। राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होता है। वह एक निश्चित अवधि तक पदासीन रहता है अर्थात् अमरीका में राष्ट्रपति चार वर्ष की अवधि तक अपने पद पर रहता है। व्यवस्थापिक सभा का राष्ट्रपति पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। यदि राष्ट्रपति संविधान का उल्लंघन करे तो उस स्थिति में व्यवस्थापिका उस पर केवल महाभियोग की शक्ति का उल्लंघन करे तो उस स्थिति में व्यवस्थापिका उस पर केवल महाभियोग की शक्ति का प्रयोग कर सकती है। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका एक दूसरे से स्वतंत्र रहती हैं और केवल सत्ता प्रयोग के समय साथ मिलकर कार्य करती हैं। सरकार के इन दोनों अंगों के बीच संबंध शक्ति संतुलन द्वारा स्थापित किया जाता है।

संसदीय शासन व्यवस्था सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर कार्य करती है। इसमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सामूहिक रूप से जनता के सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं, संसद के दो सदन होते हैं निम्न सदन अर्थात् जनता जिसमें जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं— और इस सदन में बहुमत दल के सदस्य मिलकर अपने नेता का चुनाव करते हैं जो कि शासन का प्रमुख होता है तथा प्रधानमंत्री होता है। इसका

निश्चित कार्यकाल होता है। निश्चित अवधि के पश्चात् यह सदन विघटित हो जाता है और नये आम चुनावों द्वारा इसका पुनःगठन होता है। संसद का दूसरा सदन उच्च होता है अर्थात् राज्यसभा। भारतीय संविधान ने राज्यसभा और लोकसभा को समान शक्तियाँ दी हैं। राज्य सभा राज्यों की परिषद् है। उसके सदस्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जाते हैं। संघ के विभिन्न राज्यों को राज्यसभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। भारत में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या उसकी जनसंख्या पर निर्भर है। राज्य सभा एक स्थायी निकाय है। उसके प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल छः वर्ष है।

### भारत में संसदीय व्यवस्था का ऐतिहासिक विकास

अंग्रेजी शासनकाल में संवैधानिक विकास का इतिहास भारत में प्रत्यक्ष रूप से संसदात्मक शासन के क्रमिक विकास का इतिहास है। सन् 1833 के अधिनियम द्वारा परिषद में विधायन कार्य निमित्त एक सदस्य बढ़ाया गया और इस प्रकार एक आरम्भिक व्यवस्थापिका सभा की स्थापना हुई। सन् 1853 में इस संस्था की सदस्य संख्या बढ़ाई गई और इसमें प्रान्तीय सरकार के प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया। विधायिकी कार्य करते समय इसकी कार्यवाही को सार्वजनिक कर दिया गया। यह कहा जाता है कि 1853 के अधिनियम अन्तर्गत गठित यह संस्था प्रतिवेदनों की जांच करने और उन्हें दूर करने के लिए समवेत लघु सभा की प्रकृति की थी। 1861 के अधिनियम ने प्रान्तीय विधान परिषदों की व्यवस्था कर विधायन के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण की नीति का सूत्रपात किया। पहली बार इस अधिनियम ने गैर सरकारी तत्वों को विधायी संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने का महत्वपूर्ण सिद्धान्त स्वीकार किया। इसके द्वारा आधुनिक प्रान्तीय विधानमण्डलों की नींव पड़ी।

1892 के अधिनियम द्वारा विधान परिषद् के सदस्यों को कुछ प्रतिबन्धों के अधीन बजट पर चर्चा करने, वित्तीय नीति की आलोचना करने और लोक महत्व के विषयों पर प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत विधान परिषदों को साधारण और वित्तीय दोनों प्रकार के संकल्पों को प्रस्तावित करने और उन्हें पारित करने का अधिकार दिया गया और प्रश्न पूछने और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार देकर वृद्धि की गई। कार्यपालिका अब भी निरंकुश थी।

1919 का भारत शासन अधिनियम, ब्रिटिश भारतीय इतिहास में भारत में उत्तरदायी शासन का श्री गणेश करने के लिये विख्यात है। इसने प्रान्तीय प्रशासन को दो भागों में विभाजित किया। हस्तान्तरित और आरक्षित हस्तान्तरित विषय गवर्नरों के प्रभाराधीन थे जो उनके प्रशासन के लिये मंत्रियों द्वारा पथ प्रदर्शित होना था। व्यवहार में मंत्रियों को पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई और सामान्यतः उनके परामर्श को माना गया। मंत्रियों के लिये व्यवस्थापिका का सदस्य होना आवश्यक था, जो उनका वेतन तथा सम्पूर्ति अस्वीकार कर सकती थी और प्रशासन की निन्दा कर सकती थी। इन सभी परिस्थितियों में तथा स्वयं द्वारा पुनः स्थापित विधेयक के अस्वीकार होने पर मंत्रियों को अपना पद त्यागना पड़ता था। इस व्यवस्था से प्रतीत होता है कि इस अधिनियम ने हस्तान्तरित विषयों में उत्तरदायी शासन पद्धति की स्थापना कर दी थी, पर वास्तव में इसमें कुछ अभाव भी रह गये थे।

1919 के अधिनियम के अन्तर्गत गठित व्यवस्थापिका में कठिनाइयां उपस्थित हो रही थी, इसलिये ब्रिटिश सरकार ने 1928 में ब्रिटिश भारत में शासन पद्धति के क्रियान्वयन और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की जांच करने तथा इस बात पर प्रतिवेदन देने के लिये कि उसमें उस समय वर्तमान उत्तरदायी शासन के अंशों में विस्तार परिवर्तन या संकुचन करना या उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त को स्थापित करना, क्या और किस सीमा तक वांछनीय है साइमन की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की गई। साइमन आयोग द्वारा प्रस्तुत परियोजना ऐसी थी जो संसदात्मक और अध्यक्षतात्मक दोनों प्रकार की कार्यपालिका में विकसित हो सकती थी, पर उसका चित्र अध्यक्षतात्मक कार्यपालिका के ही अधिक अनुरूप था। इस प्रकार साइमन आयोग प्रतिवेदन से स्पष्ट होता है कि भारतीय परिस्थितियां मंत्रिमण्डलीय कार्यपालिका के अनुरूप नहीं थी।

संयुक्त संसदीय समिति ने ब्रिटिश सरकार की प्रस्थापनाओं को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार केन्द्र में भी द्वैध पद्धति का उपबन्ध करने वाला भारत शासन अधिनियम 1935 बना। पर इस अधिनियम का संघीय न्यायालय के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के संबंध रखने वाले भाग को लागू नहीं किया गया और 1947 तक केन्द्रीय कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका 1919 के अधिनियम के अनुसार ही बनी रही। प्रान्तों में अवश्य ही उत्तरदायी

स्वायत्त शासन स्थापित हुआ जिसने तत्कालीन नेताओं को सत्ता का रसास्वादन कराया। संसदात्मक पद्धति की कार्यपालिका द्वारा वे किस प्रकार अपनी शक्ति का प्रयोग बिना किसी अवधि में उस समय तक कर सकते हैं जब तक कि येन-केन प्रकारेण व्यवस्थापिका के लिए चुनाव जीतकर उसमें बहुमत प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। संसदात्मक शासन प्रणाली में प्रधानमंत्री को अमेरिका के राष्ट्रपति से कहीं अधिक शक्तियां प्राप्त होती हैं।<sup>1</sup> भारतीय संविधान सभा में संसदीय व्यवस्था के पक्ष में प्रमुख रूप से निम्न तर्क दिये गये थे- प्रथम : संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होने के कारण संसदीय व्यवस्था के आधार पर वास्तविक रूप में उत्तरदायी शासन की स्थिति को प्राप्त किया जा सकेगा। द्वितीय : संसदीय व्यवस्था में लचीलापन है। तृतीय : सर्वाधिक प्रमुख तर्क जिसे पं. नेहरू, पटेल के.एम. मुंशी और डॉ. अंबेडकर सभी ने दोहराया था कि हम ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत संसदीय व्यवस्था के कार्यकरण का परिचय और अनुभव प्राप्त कर चुके हैं।

संसदीय व्यवस्था के प्रति जो भी शंकाएँ व्यक्त की गयीं उन सभी का उत्तर देते हुए श्री के. एम. मुंशी ने अभिमत प्रकट किया, “शक्तिशाली एवं लोचपूर्ण सरकार ब्रिटेन में विद्यमान है, क्योंकि कार्यपालिका शक्ति मंत्रिमण्डल में निहित है, जो निम्न सदन के बहुत पर आधारित है। इसके साथ ही हमें इस तथ्य को भूलना नहीं चाहिये कि गत सो वर्षों में भारतीय सार्वजनिक जीवन इंग्लैण्ड की संवैधानिक विधि की परम्पराओं से संचालित होता रहा है। इसमें से अधिकांश ने ब्रिटिश प्रणाली को सर्वोत्तम माना है और विगत तीस-चालीस वर्षों में इस देश के शासन में अंशत उत्तरदायी सरकार का संचालन धीरे-धीरे प्रारम्भ कर दिया गया था। आज भारतीय अधिराज्य एक पूर्णरूपेण संसदीय सरकार के रूप में कार्य कर रहा है।”<sup>2</sup>

सन् 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध में मन्त्रिमण्डलात्मक पद्धति की पृष्ठभूमि इतनी बन चुकी थी कि भारतीय राजनीतिक नेताओं को उस पद्धति के अन्तर्गत सत्ता का अनुभव इतना मोहक लगा और दशाएँ ऐसी थी कि अन्य पद्धति या इस पद्धति के प्रतिकूल गम्भीरता से सोचा भी नहीं जा सकता था। 12 अगस्त, 1946 को गठित अन्तरिम सरकार इसी पद्धति के अनुसार बनी और उसी अवस्था को भारत स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 ने दृढ़ किया। संविधान सभा की संघ संविधान समिति ने प्रारूप

संविधान में इसी पद्धति को रखा और संविधान सभा ने इसी पद्धति को स्वीकार किया।<sup>3</sup> भारत में संसदीय प्रणाली अपनाए जाने के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं:-

- संसदीय शासन प्रणाली सर्वाधिक शक्तिशाली कार्यपालिका रखती है। इसी के कारण इंग्लैण्ड की सरकार सभी परिस्थितियों में शक्तिशाली और स्थिति स्थापक सिद्ध हुई थी और ब्रिटिश संविधान के इसी गुण के कारण ब्रिटिश सरकार उन सभी कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना कर सकी थी जिनका उस समय से पूर्व 150 वर्षों से उसे सामना करना पड़ा था। इसी गुण के कारण संयुक्त राज्य अमरीका के प्रमुख संविधान विशेषज्ञों सहित प्रत्येक व्यक्ति ने ब्रिटिश प्रतिमान का अनुमोदन किया।
- संसदीय कार्यपालिका पद्धति इस देश की परिस्थितियों के अनुकूल थी। यदि अध्यक्षात्मक पद्धति को अपनाया जाता तो यह समय की प्रवृत्तियों के विरुद्ध होता। इससे भारतीय राज्यों में दुर्गम्य कठिनाई उत्पन्न हो जाती।
- जब तक कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में निकटवर्ती सम्बन्ध नहीं होता, लूट पद्धति (Spoil System) होना निश्चित था।
- सरकार के इस स्वरूप को अपनाने का मुख्य कारण यह था कि भारत में इसकी नींव वर्तमान संविधान के लागू होने के पहले ही पड़ चुकी थी और हम इसके अभ्यस्त हो चुके थे। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत सरकार का ढाँचा इसी प्रकार का था। संविधान सभा ने बिना किसी विकल्प पर विचार किये ही ऐतिहासिक परम्परा के आधार पर ऐसी सरकार के ढाँचे को अपना लिया। संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति का स्थान इंग्लैण्ड के सम्राट के समान ही है। यह कार्यपालिका का नाममात्र का प्रधान होता है (वास्तविक कार्यपालिका-शक्तिजनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों में, जिसे मन्त्रि-परिषद् कहते हैं, निहित होती है। मन्त्रि-परिषद् का ‘प्रधान’ प्रधानमन्त्री होता है। मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। यद्यपि संविधान के अनुसार समस्त कार्यपालिका-शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित

हैं, किन्तु वह उसका प्रयोग मन्त्रि-परिषद् की सलाह से ही करता है।<sup>9</sup>

- देश की विशालता एवं विविधता में ऐसी सरकार अधिक उत्तरदायी सरकार होती है।

### भारत में संसदीय व्यवस्था की सैद्धान्तिक अवधारणाएँ

भारत में संसदीय व्यवस्था की सैद्धान्तिक अवधारणाएँ संसदीय प्रणाली, सरकार के कार्यपालिका व व्यवस्थापिका अंगों के अन्तर्संबंधों पर आधारित है—

#### कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अन्तर्संबंध

संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल और व्यवस्थापिका का विलयन होकर उनमें परस्पर अन्तःनिर्भरता की स्थापना हो जाती है। अर्थात् संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के कार्यों का सम्मिश्रण हो जाता है। जबकि अध्यक्षतात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका व व्यवस्थापिका अलग-अलग होती है व उनके कार्य भी अलग-अलग होते हैं। दोनों के परस्पर संबंध नहीं होता है। कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते हैं।

#### कार्यपालिका दो भाग में विभक्त

संसदीय शासन के अन्तर्गत दो कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। एक नाममात्र का दूसरा वास्तविक। नाममात्र का कार्यकारी राज्य का प्रमुख होता है। वास्तविक सत्ता इसके पास नहीं होती है। शासन की वास्तविक सत्ता का प्रयोग मंत्रिमण्डल करती है जो संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष होता है जो शक्तियों का प्रयोग करता है।

#### राजनीतिक व्यवस्था में संसद सत्ता का केन्द्र

राजनीतिक व्यवस्था में संसद ही कार्यपालिका व व्यवस्थापिका की निदेशक, निरीक्षक व नियंत्रक होती है। कार्यपालिका का अस्तित्व संसद के प्रसाद-पर्यन्त ही रहता है। संसद के महत्व का कारण इसमें शक्तियों का केन्द्रण है। सभी शक्तियों का उद्भव संसद से ही होता है, सभी शक्तियाँ संसद द्वारा प्रतिबन्धित व सीमित रहती हैं। सभी महत्वपूर्ण वाद विवाद संसद में ही होते हैं।

#### मंत्रिमण्डल का निर्माण प्रधानमंत्री द्वारा

मंत्रिमण्डल का निर्माण प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है। इसमें प्रधानमंत्री अन्य मंत्रियों का नेता व निर्माता बन जाता है। इसमें मंत्रिमण्डल एक टीम का रूप धारण कर लेता है और प्रधानमंत्री इस टीम के निर्माता बन जाते हैं। मंत्रिमण्डल के निर्माता के रूप में प्रधानमंत्री अन्य

मंत्रियों से प्रधानता पाता है। इसी कारण शासन की सारी शक्तियाँ प्रधानमंत्री में केन्द्रित हो जाती हैं।

#### राजनीतिक सजातीयता

संसदीय शासन में राजनीतिक सजातीयता होती है अर्थात् मंत्रिमण्डल में सब मंत्री एक टीम की भाँति काम करते हैं और जनता के सामने मतभेद प्रकट नहीं करते। मंत्री प्रायः एक ही दल से संबंधित होते हैं परन्तु यदि संयुक्त सरकार हो तो वे एक से भी अधिक दलों के लिये जा सकते हैं।

#### विधानमंडल को भंग करने का अधिकार

संसदीय सरकार में जब कभी किसी मामले पर कार्यपालिका और विधानमण्डल में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। उस परिस्थिति में मुख्य कार्यपालिका को विधानमण्डल के भंग करने का अधिकार होता है ताकि वह नए चुनाव कराके मतदाताओं का निर्णय प्राप्त कर सकें।

#### नेतृत्व

संसदीय शासन में प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का नेता होता है। वह मंत्रिमण्डल रूपी मतेहराब की आधारशिला है और लास्की के शब्दों में, “मंत्रिमण्डल के निर्माण, जीवन और मरण में केन्द्रीय स्थिति रखता है।” अर्थात् प्रधानमंत्री का नेतृत्व शासन का नेतृत्व होता है।

#### मंत्रिमण्डल सामूहिक संस्था

संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल एक सामूहिक संस्था बन जाती है। पीटर सर्कल का कहना है कि “मंत्रिमण्डल ऐसी सामूहिक संस्था है जो एक व्यक्ति की तरह उत्तरदायित्व का हिस्सेदार रहती है।”<sup>10</sup> इसके कारण मंत्रिमण्डल के सदस्य सामूहिक रूप से प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य करते हैं। इसमें शासन और नीति में भी एकता कायम रहती है और मंत्रिमण्डल एक ठोस संस्था बनकर शक्ति का केन्द्र बिन्दु बन जाता है।

#### भारत में संसदीय व्यवस्था की विशेषताएँ

भारतीय संविधान एक संसदीय सरकार की व्यवस्था करता है केन्द्र एवं राज्यों में। यद्यपि संविधान सभी कार्यपालिका शक्तियाँ केन्द्र एवं राज्यों में क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल के नाम से होती हैं जिनका वास्तविक उपयोग मंत्रिमण्डल करता है यह तो संवैधानिक शासन की भूमिका निभाते हैं। संसदीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ एवं भारत में इसके प्रभाव निम्नलिखित हैं—

## नाम मात्र का अध्यक्ष

ब्रिटिश राजतंत्र की भांति भारतीय राष्ट्रपति में संघ की सभी कार्यपालिका शक्तियाँ निहित होती हैं। लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग वह मंत्रिमण्डल की सलाह से करता है। मूल संविधान में मंत्रिमण्डल की सलाह के लिए बाध्यकारी था और नहीं इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया। परिणामस्वरूप संदेह पूर्णतया स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की सलाह की उपेक्षा कर एवं वास्तविक शक्तियों का उपयोग करता है। तथापि 42वें संविधान संशोधन 1976 में यह संदेह विशेष स्थिति में स्थापित किए गए जो कि इस शर्त पर कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का इस्तेमाल मंत्रिमण्डल की सलाह पर करने को मान जाये। इस प्रकार मंत्रिमण्डल की सलाह को स्वीकार करने को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बनाया गया। 44वें संशोधन 1978 द्वारा राष्ट्रपति को मंत्रालय द्वारा लिए गए निर्णय को पुनः विचार हेतु भेजने की शक्ति दी गई, लेकिन इसके पुनः विचार के पश्चात् मंत्रालय की सलाह को उसे स्वीकार करना पड़ता है।

### वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रिमण्डल में

संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में नाममात्र की होती हैं जबकि वास्तविक कार्यपालिका शक्तियों का इस्तेमाल मंत्रिमण्डल की सलाह पर प्रधानमंत्री करता है संभवतः औपचारिक रूप से प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है लेकिन व्यवहार में राष्ट्रपति के पास बहुत ही सीमित विकल्प होते हैं प्रधानमंत्री को नियुक्त करने में। सामान्य परिस्थितियों में उसे बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री बनाने के लिये बुलाना पड़ता है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति संबंधी मामले में वह अपने स्व विवेक का इस्तेमाल कर सकता है यदि किसी भी राजनीतिक पार्टी को संसद में सुस्पष्ट रूप से बहुमत प्राप्त न हुआ हो या उसका कोई मान्यता प्राप्त नेता नहीं हो। मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सिफारिश पर करता है। वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को मंत्रिमण्डल का सदस्य नहीं नियुक्त कर सकता है जो कि प्रधानमंत्री का स्वीकार्य न हो।

### शक्तियों का संयोजन

कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका निकट सहयोग में काम करती हैं एवं यहाँ पर कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका की शक्तियों का संयोजन होता है। सभी मंत्रियों को संसद से लिया जाता है। एक व्यक्ति जो कि संसद का सदस्य नहीं है वह केवल अधिकतम छः महीने तक ही मंत्री बना रह

सकता है जब तक कि वह दोनों सदनों में से किसी भी एक सदन की सदस्यता प्राप्त न कर ले। संसद की कार्यवाही में मंत्रिगण अहम् भूमिका निभाते हैं। ये संसद में कई अहम् बिलों को प्रस्तुत करते हैं एवं बहुमत के समर्थन पर बिना किसी कठिनाईयों के उन्हें कानूनों में बदलते हैं या बनाते हैं।

### सामूहिक उत्तरदायित्व

भारत में संसदीय सरकार की एक ओर विशेषता है कि मंत्रिमंडल एक टीम की तरह कार्य करता है। सभी निर्णय मंत्रियों के द्वारा संयुक्त रूप से लिए जाते हैं। जब कभी भी कोई निर्णय लिया गया हो तब मंत्रीगण उस पर असहमति भी व्यक्त कर सकते हैं लेकिन एक बार जो निर्णय होता है फिर उन्हें निर्णय को संयुक्त रूप से या सामूहिक रूप से स्वीकार करना पड़ता है।

### संसदीय व्यवस्था का कार्यकरण

संसदीय लोकतंत्र के अन्तर्गत सोलह आम चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। 1975-76 में जब तत्कालीन शासक वर्ग में लोकतांत्रिक मार्ग से हटकर सत्ता का असीमित प्रयोग किया, तब 1977 में सम्पन्न छठी लोकसभा के चुनाव में जनता ने उस शासक वर्ग को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार जनता लोकतंत्र के प्रति निष्ठा और प्रतिबद्धता का परिचय दे चुकी है। इसके अतिरिक्त द्वितीय महायुद्ध के बाद जिन नव स्वतंत्रता प्राप्त एशियाई-अफ्रीकी देशों ने संसदीय लोकतंत्र को अपनाया था उनमें से कुछ देशों ने तो संसदीय व्यवस्था को त्याग कर अध्यक्षतात्मक व्यवस्था को अपना लिया और कुछ देशों ने लोकतंत्र के मार्ग को छोड़कर अधिनायकतंत्र को ही अपना लिया। भारत में पिछले कई वर्षों से संसदीय व्यवस्था ही कार्य रही है, इसे भी कुछ पक्ष संसदीय व्यवस्था की सफलता का ही नाम देते हैं, लेकिन इस सबका आशय यह नहीं लिया जा सकता कि भारत में संसदीय लोकतंत्र ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है। नेहरू के समय में भी एक-दो ऐसी घटनाएं घटित हुई थी, जिन्हें संसदीय व्यवस्था पर आघात या संसदीय व्यवस्था का क्षरण कहा जा सकता है। उदाहरण के लिये 1959 में केरल की साम्यवादी सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू करने का कार्य ऐसी ही एक घटना थी। लेकिन फिर भी नेहरू काल में ऐसा समझा जाता था कि संसदीय व्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य कर ही है। ऐसा माना जाने के पीछे दो प्रमुख कारण थे- नेहरू का महाव्यक्तित्व एवं भारतीय राजनीति में कांग्रेस दल का लगभग एकछत्र प्रभुत्व।

लेकिन 1964 के मध्य में नेहरू के निधन के बाद नवीन नेतृत्व सामने आया और चौथे आम चुनाव ने जब भारतीय राजनीति में कांग्रेस दल के एकछत्र प्रभुत्व को समाप्त कर दिया तब इसकी बदली हुई राजनीतिक स्थिति में संसदीय व्यवस्था का क्षय प्रारम्भ हुआ।<sup>11</sup>

1990 के बाद केन्द्र के स्तर पर सात गठबन्धनीय (गैर-कांग्रेसी) सरकारें सत्तारूढ़ हुई जिसमें वाजपेयी सरकार की संभवतया सबसे बड़ी उपलब्धि यही कही जा सकती है कि वह एक वर्ष से ज्यादा समय पूरा कर सकी। यह सरकार गिरी नहीं, वर्न् इसे गिराया गया। श्री वाजपेयी ने विषम चुनौतियों व समस्याओं में अपना एक वर्ष पूरा किया, जो किसी भी गठबन्धनीय सरकार के प्रधानमंत्री ने नहीं किया। उनपर पार्टी के आन्तरिक दबाव, आर.एस.एस. का दबाव, ममता, समता आदि घटकों के दलों का दबाव, बराबर रहा है। आज भी प्रधानमंत्री की अपनी साख्र है और इसमें वृद्धि भी हुई है। पूर्व की भांति अब आडवाणी-वाजपेयी के बीच सम्बन्धों में कोई विवाद नहीं। बिहार के चुनावों के लिए सहयोगी दलों (समता, जनतादल-यू., लोकशक्ति) के बीच तनाव जरूर है, मगर भाजपा इससे निपट लेगी।

यह सच है कि भारतीय राजनीति 1996-99 एक संक्रमण काल से गुजर रही थी, इसमें नई राजनीतिक ताकतों के पुनर्गठन की संभावना अधिक हो सकती है लेकिन क्षेत्रीय दलों के सम्मुख भाजपा के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार के अलावा कोईचारा भी नहीं है। यदि प्रधानमंत्री गठबन्धन (NDA) के एजेण्डा पर आम सहमति के आधार पर शासन चलते रहेंगे, तब उन्हें कोई खतरा उत्पन्न नहीं होगा। तत्कालीन प्रधानमंत्री के स्थिति-शासन व दलों में-समकक्षों में प्रथम कहना भ्रामिक नहीं होगा, क्योंकि अटलजी भारतीय राजनीति के वरिष्ठ, अनुभवी व सुलझे नेता रहे हैं। कारगिल युद्ध ने उनका कद ऊँचा किया है। पूर्व के संसदीय चुनाव भी अटल जी व सोनिया के बीच नेतृत्व के आधार पर ही लड़े गए थे। यहां चुनावों में 'Presidential touch का आभास हुआ था। ब्रिटिश लेखक ने प्रधानमंत्री को समकक्ष में प्रथम (Primus Inter Parcs) कहा तथा विलियम हारकार्ट ने 'नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा' की उपमा दी, जो भारतीय सन्दर्भ में आज सभी को प्रतीत होती हैं। 24 दलों के रा.ज.ग. में उनकी वही स्थिति प्रतीत होती है, यद्यपि उन्हें आम सहमति के आधार पर कार्य करना होता है तथा वे (Coordination Committee) के निर्णय से

भी बाधित हैं। उनकी प्रतिष्ठा एक दलीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री से नहीं की जा सकती, जहां प्रधानमंत्री राज्यों की राजनीति पर नियन्त्रण रखते थे। आज का प्रधानमंत्री राज्यों का सर्वमान्य नेता नहीं कहा जा सकता।

वह उनकी राजनीति का चालक नहीं बन सकता। फिर भी, हमारे प्रधानमंत्री का करिश्माई नेतृत्व है। नीति-निर्माण में वे अपने सहयोगी दलों (मंत्रिमण्डल सदस्यों) के सलाह पर कार्य करते हैं। आज भी प्रधानमंत्री कार्यालय है (PM's Office) मगर वह मनमाने तरीके से नीति निर्माण नहीं कर सकता, जैसा कि श्रीमती गांधी के काल में हुआ करता था। जहां तक प्रधानमंत्री की अपने दल व सहयोगी दलों के रिश्तों का प्रश्न है, वह भी आज चुनौती से मुक्त है। उन पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वे स्वेच्छाचारी शासक बन सकते हैं।

भाजपा के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार को देश में विद्यमान भयंकर समस्याओं से जूझना पड़ा। उत्तरी भारत में जातीय संघर्ष (विशेषतः बिहार), गरीबी, महंगाई, 5वें वेतन आयोग से उत्पन्न कर्मचारियों की नाराजगी व हड़ताल, उदारीकरण की समस्या, महिला आरक्षण को अन्जाम देना, लोकपाल विधेयक को कानून बनाना, अनुच्छेद 356 के अनुचित प्रयोग पर रोकथाम आदि जो राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन द्वारा घोषित (16 अगस्त, 1999) एजेण्डे के मुख्य बिन्दु रहे। यदि प्रधानमंत्री इन मुद्दों को व्यावहारिक मूर्त रूप दे सकते हैं तो उनकी स्थिति और मजबूत होती। भारतीय विमान IC-814 के अपहरण के समय सहयोगी दलों की यह शिकायत रही कि प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री ने इस प्रकरण पर उनसे कोई गम्भीर परामर्श नहीं लिया। समता पार्टी के नेता एवं रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडिस ने भी अपनी नाराजगी जाहिर की है। उनका तर्क रहा कि यह मसला भाजपा-हिन्दुत्ववादी नहीं था, अपितु राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ा था।

आज मतदाताओं को देश में व्यापत गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, बढ़ती आबादी, पिछड़ापन आदि मुद्दों पर एकजुटता का प्रदर्शन करना होगा तथा ऐसी लोकसभा का गठन करें जो इन मुद्दों के विरुद्ध ठोस कदम उठा सके तथा देश को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान कर सके। मतदाताओं को स्वयं को अब अपने राजनीतिक भविष्य का फैसला करना होगा। सही लोकतन्त्र को विवेकशील मतदाता ही जीवित रख सकता है। मतदाता की उदासीनता अब उनके लिए ही भारी पड़ेगी, क्योंकि पिछले तीन वर्षों में यह तीसरा आम चुनाव सम्पन्न हुआ।

फलतः मतदाताओं के पास खंडित जनादेश देने के अलावा कोई चारा नहीं रहा। जिससे त्रिशंकु स्थिति पैदा होने के कारण राष्ट्रीय धन की बरबादी हुई है। केन्द्रीय सत्ता प्राप्त करने के लक्ष्य से क्षेत्रीय वर्चस्व अपने-अपने समीकरण/गठबंधन करते आ रहे हैं।

1950 से 1977 तक की राजनीतिक परिस्थिति के आधार पर सभी लोगों ने यह स्वीकार कर लिया कि संसदीय प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इसका प्रमुख कारण था- कांग्रेस पार्टी का एक सशक्त तथा अनुशासित दल होना और उसमें श्री जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी के रूप में सफल एवं सर्वमान्य नेता का होना।

परन्तु 1977 के पश्चात् कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिससे ऐसा लगने लगा संसदीय प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर रही है और इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। संक्षेप में, वर्तमान प्रणाली में निम्नलिखित त्रुटियाँ आ गई हैं-

#### ➤ राजनीतिक दलों का बाहुल्य

इसके कारण केन्द्र व राज्यों में सरकारों का पतन हुआ। इसके कारण अनेक बार सरकार बनाने में भी कठिनाई आ जाती है। 1979 तक यह बीमारी राज्यों तक सीमित थी किन्तु 1979 के पश्चात् यह केन्द्र में भी आ गई और इसके कारण दो राष्ट्रीय सरकारों का पतन हुआ। 1989 में जनता पार्टी की सरकार केन्द्र में सत्ता में आई। यह विभिन्न विचारधारा वाले राजनीतिक दलों का एक गठबन्धन था। आपसी मतभेद के कारण दल में विभाजन हो गया और श्री चरण सिंह अपने समर्थकों के साथ सरकार से बाहर आ गये जिसके फलस्वरूप श्री मोरारजी की सरकार गिर गई। 1996 में सम्पन्न संसदीय चुनाव में भी राजनीतिक दल को लोक सभा में बहुमत नहीं मिला। राजनीतिक दलों की बहुलता के कारण संसद में एक सशक्तविपक्ष सम्भव नहीं होता है जो सरकार के निर्णयों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सके तथा उसके ऊपर नियंत्रण रख सके। यह सब लोकसभा के विभिन्न चुनावों में देखने को मिला।

#### ➤ भारतीय प्रधानमन्त्री की अध्यक्षतात्मक भूमिका

भारतीय प्रधानमन्त्री के चयन की परिवर्तित प्रक्रिया की ओर ध्यान दें तो यह अब व्यवहार में

अध्यक्षात्मक पद्धति के समरूप हो गई है। अब अमरीकी राष्ट्रपति की भांति भारत का प्रधानमन्त्री भी प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं द्वारा अपने प्रभावक व्यक्तित्व, कुशल नेतृत्व, लोक कल्याणकारी नीतियों एवं ठोस उपलब्धियों के आधार पर चुना जाने लगा है। भारत के आम चुनाव प्रधानमन्त्री के चुनाव कहे जा सकते हैं। सन् 1952, 1957 एवं 1962 में पण्डित नेहरू एवं 1971 तथा 1980 में श्रीमती गाँधी के कार्यकाल में आम निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से केवल नेता के आधार पर लड़े गए थे। दिसम्बर 1984 का चुनाव भी प्रधानमन्त्री का ही चुनाव था। इस निर्वाचन प्रक्रिया के कारण प्रधानमंत्री अब संसद के प्रति सैद्धान्तिक रूप से उत्तरदायी होने के स्थान पर व्यवहार में अमरीकी राष्ट्रपति की भांति प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं के प्रति अपने को उत्तरदायी समझने लगे हैं। अप्रैल-मई 2014 में सम्पन्न 16वीं लोकसभा के चुनाव नरेन्द्र मोदी बनाम राहुल गाँधी में से किसी एक के चयन को लेकर लड़े गये।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से भारत की उभरती हुई राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण किया जाए तो यह विदित होता है कि भारत के प्रधानमन्त्री की अध्यक्षतात्मक भूमिका बड़ी तीव्रता से विकसित हो रही है।

#### ➤ संसदीय राजनीति का हास

कुछ समय से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संसद का महत्व निरन्तर घटता जा रहा है। संसद की स्थिति अब यह है कि वह न तो सरकार की त्रुटियों का जनता के सम्मुख भली प्रकार उद्घाटन कर सकती है, न सरकार की किसी नीति में बाधक बन सकती है और न उसे सतर्कता की स्थिति में रख सकती है। मन्त्रियों की ओर से भी संसद की कुछ-कुछ परोक्ष उपेक्षा होने लगी है।

#### ➤ राष्ट्रीय राजनैतिक दलों में एकता तथा अनुशासन का अभाव

भारतीय संसद में अब दलीय अनुशासन से अप्रतिबन्धित खरी और निर्भीक समालोचना का सम्पुट नहीं पाया जाता। कांग्रेस पार्टी जो देश की एक सबसे बड़ी पार्टी है वह इससे काफी प्रभावित हुई है। 1976 तक कांग्रेस पार्टी में एकता एवं अनुशासन था क्योंकि उसमें नेहरू और श्रीमती

इन्दिरा गांधी जैसे नेता थे। 1991 के चुनाव के पश्चात् प्रधानमंत्री श्री राव को कर्नाटक में 3 और आन्ध्र प्रदेश में 2 मुख्य मंत्रियों को बदलना पड़ा। 1993 में कई राज्यों में चुनाव के पश्चात् कांग्रेस पार्टी में नेता के चुनाव में पर्याप्त कठिनाई हुई थी जैसे हिमाचल प्रदेश और मध्यप्रदेश। इन राज्यों में पूर्ण बहुमत होने के पश्चात् भी नेता के चुनाव में 10 दिन का समय लग गया, क्योंकि इसके कई दावेदार थे।

### ➤ व्यवस्था के विकल्प की खोज

सन् 1950-60 के दशक में हम संसदीय प्रणाली को भारत के लिए श्रेष्ठतम शासन-व्यवस्था मानते थे। लेकिन वर्ष 1976-2014 के दशकों में हमारा यह भ्रम टूट गया। 15वीं लोकसभा (2009-14) के कार्यकरण के आँकड़े यह दर्शाते हैं कि 5 वर्ष के कार्यकाल में केवल 345 दिन ही इसकी बैठकें हुईं, केवल 179 विधेयक ही पारित किए। लोकसभा में 85: और राज्यसभा में 22: समय बर्बाद हुआ। पिछले दो दशकों से देश में शासन प्रणाली का कोई विकल्प ढूँढ़ने में राजनीति शास्त्री, समाजशास्त्री और संविधानविद् लगे हुए हैं।

### ➤ मतदाताओं की अपरिपक्वता

अशिक्षा के कारण मतदाता अपने मत का सही प्रयोग नहीं कर पाते हैं और जाति, धर्म तथा धन से अधिक प्रभावित होकर मतदान करते हैं। लोकसभा चुनाव व विधान सभा चुनाव में जाति और धर्म ने बहुत प्रमुख भूमिका निभायी है। राष्ट्रीय मुद्दों पर उनका ध्यान नहीं जाता है जिसके कारण अस्थिर सरकारें बनती हैं जो देश के संपूर्ण हितों की उपेक्षा करती हैं तथा स्वयं अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाती है।

पिछले दो दशकों में कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। केन्द्र में अल्पमतीय तथा गठबन्धन सरकारों का सिलसिला चल पड़ा। आज तो संसद में मान्यता प्राप्त विपक्ष भी नहीं रहा जो सरकार को हिलाने की स्थिति में हो। सत्तारूढ़ दल और विपक्ष में टकराहट के अवसर बढ़ते जा रहे हैं। संसदीय शासन प्रणाली का आधारभूत 'सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त' मखौल बनता जा रहा है। इस प्रकार यह भारतीय संसदीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण

उपलब्धि कही जा सकती है कि राजनीतिक दल (जो संसदीय प्रणाली के भवन का आधार स्तम्भ कहे जाते हैं) राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष करते हैं और भारतीय लोकतन्त्र को एक व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं।<sup>12</sup>

### संसदीय लोकतन्त्र को सार्थक बनाने हेतु सुझाव

देश में संसदीय लोकतन्त्र अपनी जड़ें जमा रहा है और छोटे-मोटे बवण्डरों का सामना करने की क्षमता उसमें आ गयी है। मोरारजी देसाई ने लिखा है, "आज इस देश के सभी क्षेत्रों में कुछ-न-कुछ खामियाँ दिख पड़ती हैं..... पर सिर्फ इसका कारण यह कहना ठीक नहीं कि संसदीय जीवन के सूत्र टूटने लगे हैं।"<sup>13</sup> संसदीय लोकतन्त्र की बुनियादी धारणाओं का बराबर पालन हुआ है। देश का नेतृत्व प्रधानमंत्री के हाथ में रहा है और मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी रहा है। समाज के विखण्डित ढाँचे में राजनीतिक संस्थाओं, मूल्यों और विचारों का प्रवेश हुआ है। समाज के विविध वर्गों को राजनीतिक व्यवस्था में स्थान मिला है, उन्हें इनका लाभ और स्थान मिला है उन पर इनकी जिम्मेदारियाँ भी आयी हैं। अब तक जो गाँव राजनीतिक व्यवस्था से दूर थे वे इसके पास आ रहे हैं।<sup>14</sup>

हमें भारत में संसदीय लोकतन्त्र को अधिक सार्थक बनाने हेतु निम्नलिखित सुधार करने होंगे-

- दल-बदल पर रोक
- प्रभावशाली विरोधी दल
- नियमों पर आधारित
- अधिक उत्तरदायी प्रशासन
- राजनीतिक चेतना जाग्रत करना
- निष्ठावान, योग्य और ईमानदार प्रतिनिधियों का चुनाव
- चुनाव प्रणाली में सुधार करना

डॉ. अप्पादोराय के अभिमत में वर्तमान संसदीय व्यवस्था को नष्ट करके नया भवन बना लेने से ही भारतीय लोकतन्त्र की ज्वलन्त समस्याएँ हल नहीं हो जायेगी। सच्चाई यह है कि वर्तमान संसदीय प्रणाली से तीन स्पष्ट लाभ हमें उपलब्ध हो रहे हैं-प्रथम, भारत जैसे विशाल विविधता वाले देश में मन्त्रिमण्डल द्वारा विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व हो रहा है। द्वितीय, मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल को नेतृत्व प्रदान करता है और तृतीय, सरकार लोकमत के प्रति उत्तरदायी बनी रहती है।<sup>17</sup> वर्तमान व्यवस्था को नष्ट करके नयी व्यवस्था अपना लेने

से ही हमारे देश की समस्याओं का समाधान नहीं हो जायेगा। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने ठीक ही लिखा है कि, “हमारी संसदीय लोकतन्त्रीय व्यवस्था में कई कमियाँ और कुछ संस्थानात्मक विकृतियाँ हैं, किन्तु एक व्यापक सर्वेक्षण की दृष्टि से देखें तो कमियाँ व्यवस्था में इतनी नहीं बल्कि हम लोगों में हैं, जो इस व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। प्रायः जब हम संसदीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था को दोष देते हैं तो उस कहावत को चरितार्थ करते हैं कि ‘नाच न जाने आंगन टेढ़ा’।”<sup>18</sup> यदि हममें और हमारे राजनीतिज्ञों में त्याग और सेवा की भावनाएँ विकसित हो जायें तो कोई कठिन नहीं कि लड़खड़ाता संसदीय लोकतन्त्र परिपक्व व्यवस्था के रूप में उभरेगा। हमारी संसदीय व्यवस्था संक्रमणकालीन संकटों के कठिन दौर को पार कर रही है, जिनसे निराश और हताश होने का कोई कारण नहीं है।

भारत में सन् 1952 से लेकर 2014 तक 16 आम चुनाव सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। भारतीय निर्वाचन आयोग ने 16वीं लोकसभा के लिए हुए आम चुनाव का परिणाम 17 मई, 2014 को घोषित किए। कुल 543 सीटों के लिए हुए चुनाव में भारतीय जनता पार्टी (भा.ज.पा.) ने 282 सीटें जीत कर स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को कुल 334 सीटें प्राप्त हुई। इस जीत के साथ ही भाजपा वर्ष 1984 के बाद लोकसभा में पूर्ण बहुमत पाने वाला पहला दल बना। कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को मात्र 60 सीटें ही प्राप्त हुई। इस बार भाजपा नरेन्द्र मोदी लहर पर सवार होकर केन्द्र में सरकार बनाने के काबिल हुई।

संसदीय शासन में प्रधानमंत्री के निर्वाचन का उसकी भूमिका और स्थिति पर महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है। यदि प्रधानमंत्री पदधारी अपना पद अपनी ही राजनीतिक शक्ति और जनता के सीधे समर्थन के बल पर प्राप्त करता है। (पं. नेहरू ने अपने जीवनकाल में, श्रीमती गांधी ने 1971 और 1980 में तथा राजीव गांधी ने दिसम्बर 1984 में इसी रूप में पद प्राप्त किया था), तो आत्म विश्वास के साथ शासन प्रमुख के रूप में कार्य करने में समर्थ होता है, लेकिन जब वह अपना पद अन्य तत्वों के समर्थन और सहयोग के बल पर प्राप्त करता है (1964, 1966, 1967, 1977, 1989, 1990, 1996, 1997, 1998, 2004 और 2009 में ऐसी ही स्थिति थी), तो प्रधानमंत्री पद की स्थिति स्वाभाविक रूप से निर्बल हो जाती है।

जनता पार्टी में प्रचलित घटकवाद ने प्रधानमंत्री की स्थिति को काफी आघात पहुंचाया उनकी पार्टी और सरकार के नेता कई बार एक-दूसरे के विरोधी विचार प्रकट कर देते थे। चरणसिंह मिली-जुली सरकार के नेता थे, दल-बदलू प्रधानमंत्री होने के कारण जनता में उनके प्रति कोई आस्था नहीं थी और फिर वे श्रीमती गांधी के समर्थन से प्रधानमंत्री बने थे। जिससे उनकी लोकप्रियता काफी कम हो गई। 19 जनवरी, 2011 के अंक में इण्डिया टुडे लिखता है—“प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह अब भी सत्ता में है, लेकिन उनकी सत्ता कमजोर पड़ने लगी है, वे ज्यादा-से-ज्यादा एक भरोसेमन्द, कर्तव्य परायण प्रधानमंत्री है ‘असाधारण’ कतई नहीं। वे अपने राजनैतिक संरक्षक के लिए जोखिम रहित निवेश है।”<sup>19</sup>

इण्डिया टुडे के सम्पादक 13 जुलाई, 2011 के अंक में लिखते हैं, “अगर कार एक ड्राइवर चला रहा हो तो रास्ते से भटकने की सम्भावना हमेशा रहती है (लेकिन अगर दो ड्राइवर हों तो कार का दुर्घटनाग्रस्त होना तय है। यूपीए सरकार में तीन ड्राइवर हैं, सभी आगे की सीट पर बैठे हैं। मनमोहन सिंह को कार की चाबी थमाए बिना स्टीयरिंग व्हील पर बैठा दिया गया है, अगर कुछ आगे नहीं बढ़ता तो उन्हें दोषी ठहराया जाता है, जब वे कोशिश करके उसे आगे बढ़ाते हैं तो ड्राइवर और दिशा-निर्देशक प्रायः अलग-अलग लक्ष्य की ओर बढ़ रहे होते हैं।”<sup>20</sup> इस प्रकार मिलीजुली सरकार में प्रधानमंत्री की स्थिति दयनीय हो जाती है। वह कोई भी फैसला स्वयं नहीं ले पाता है। राजस्थान पत्रिका ने 17 फरवरी, 2011 के सम्पादकीय में लिखा है कि गठबंधन धर्म का मतलब क्या यह है कि सरकार जिन्दा मक्खी निगलती रहे। यह कहकर पल्लू कैसे छुड़ाया जा सकता है कि तमाम हिदायतों के बावजूद ए. राजा मनमानी करते रहे और सरकार ‘मजबूरी’ में कुछ नहीं कर पाई।..... मनमोहन सिंह की 2जी स्पेक्ट्रम मामले में सबसे बड़ी गलती यही थी कि सबकुछ जानते-समझते उन्होंने देश को लुटने दिया।<sup>21</sup> मोदी के प्रचार का फोकस सुशासन और विकास के वादे पर था। जनदेश भी भाजपा/एनडीए और मोदी के लिए भरपूर विश्वासमत की तरह आया। 21 मई, 2014 को पहले 282 सदस्यीय भाजपा संसदीय दल ने और बाद में 335 सदस्यीय एनडीए ने नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री पद के लिए सर्वसम्मति से औपचारिक रूप से चुन लिया। राष्ट्रपति ने नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री

मनोनीत कर दिया और 26 मई, 2014 को उन्हें प्रधानमन्त्री पद की शपथ दिलायी।

भारत के संसदीय इतिहास में 16वीं लोकसभा के गठन को लेकर जैसा उत्साह और अपेक्षाओं का माहौल रहा वैसा हाल के वर्षों में कभी देखने में नहीं आया। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में यह पहला मौका था जब किसी गैर-कांग्रेस पार्टी ने अकेले अपने बलबूते पर लोकसभा में बहुमत हासिल किया था। वर्ष 1989 के बाद तो पहली बार किसी पार्टी को अपने सहयोगियों की मदद के बिना बहुमत मिला।<sup>22</sup> मगर भाजपा के सामने कुछ और बाधाएं भी हैं। सबसे बड़ी बाधा तो इसका 'मार्गदर्शक' और उसके आनुषांगिक संगठन हैं। ऐसे वक्त में जब मोदी सरकार 'विकास' और 'सुशासन' का लक्ष्य बनाकर चल रही है, वे 'घर वापसी' के नाम पर 'धर्मांतरण' का ढोल बजा रहे हैं। प्रधानमंत्री को उन तमाम स्कीमों के क्रियान्वयन में सुधार पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अब ये देखने वाली बात है वर्तमान पूर्ण बहुमत वाली मोदी सरकार एवं 2019 में होने वाले 17वीं लोकसभा के आम चुनाव के बाद भारत में संसदीय शासन-व्यवस्था की क्या दिशा और दशा रहती है।

#### सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. कश्यप, सुभाष, "संसद का इतिहास", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005, पृ. 1
2. अग्रवाल, आर.सी., "भारत और आधुनिक विश्व", दिव्या प्रकाश, ग्वालियर 1991, पृ. 421-427
3. जैन, पुखराज, बी.एल.फाड़िया, "भारतीय शासन एवं राजनीति" साहित्य भवन पब्लिकेशन, 1998, पृ 0 58
4. पुखराज जैन, "भारतीय राज्य-व्यवस्था", साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ 0 336-337
5. पुखराज जैन, बी.एल.फाड़िया, "भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन, 1998, पृ 0 60, 61, 62
6. कार्ट, सी. एम. और हर्ज, जे.एच., गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स इन द ट्वेन्टीथ सेन्चुरी, पृ 0 34, 35
7. गाबा, ओम प्रकाश, "तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा", मयूर पेपरबैक्स, ए-95 नोएडा, पृ 0 144
8. फड़िया, बी.एल., "भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016, पृ. 101
9. पाण्डेय, जय नारायण, "भारत का संविधान", सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2014, पृ. 20
10. शंकधर, श्याम लाल "भारतीय संसद", 1978, पृ 0 11
11. एस.के. खन्ना, "कोईलेशन पॉलिटिक्स इन इण्डिया", कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, न्यू देहली, 1999, पृ 0 129
12. एम. पट्टाभिरमैया, "जनरल इलेक्सन इन इण्डिया", 1967, पृ. 2
13. सिन्हा, सच्चिदानन्द, इतवारी पत्रिका, 19 मई, 1985, पृ. 8-9
14. देसाई, मोरारजी, 'भारत में संसदीय लोकतन्त्र', लोकतन्त्र समीक्षा, जनवरी-मार्च 1969, पृ. 2-3
15. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति,, पृ. 9
16. कश्यप, सुभाष, दिनमान, 6 सितम्बर, 1970, पृ. 6-7
17. कॉस्टीट्यूएण्ड असेम्बली डिबेट्स, खण्ड 11, पृ. 984-995
18. The Hindustan Times, April 28, 1968
19. इण्डिया टुडे, 19 जनवरी, 2011
20. इण्डिया टुडे, 13 जुलाई, 2011
21. राजस्थान पत्रिका, 17 फरवरी, 2011
22. प्रेसवाणी, जून 2014, पृ. 22

# पाली जिले में मेहन्दी उद्योग की भूमिका

इन्द्रा बंसल

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ. नवनीता सिंह

सह आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्राचीनकाल से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तथा विकासशील राष्ट्र होने के कारण लघु उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। राजस्थान में पाली जिले अर्न्तगत मेहन्दी उद्योग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश की 90 प्रतिशत मेहन्दी का उत्पादन सोजत क्षेत्र में होता है। सन् 2015-16 में मेहन्दी का उत्पादन क्षेत्रफल 41282 हैक्टेयर रहा था। इस उद्योग में लगभग 150 से 200 करोड़ रु. की पूँजी निवेशित है। इसके उत्पादों का विदेशों में निर्यात होता है। अतः मेहन्दी उद्योग का राजस्थान राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है यह उद्योग ना सिर्फ रोजगार उपलब्ध कराता है बल्कि अपने उत्पाद के निर्यात से विदेशी मुद्रा के अर्जन में भी सहायक है। तथा इसका निर्यात विश्व के विभिन्न देशों में किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मेहन्दी व्यापार के समक्ष उपस्थित समस्याओं तथा सुझावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**संकेताक्षर :** मेहन्दी में पाये जाने वाले तत्व, उत्पादन, पूँजी की उपलब्धता, अर्थव्यवस्था।

**ब**दलते हुए वैश्विक परिवेश में, सत्ता राजनीति से नहीं, अपितु अर्थशास्त्र से जन्म लेती है। इसलिए जरूरी है कि सम्पूर्ण रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ विकास के लिए विकसित और तीव्रतापूर्वक विस्तारित कुटीर व लघु क्षेत्र है। भारत एक विकासशील राष्ट्र होने के कारण यहाँ लघु उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो वर्तमान में लगभग 2.3 लाख इकाईयों में 8 लाख लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है। मेहन्दी उद्योग में राजस्थान की अर्थव्यवस्था में सोजत एवं पाली का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् 2015-16 में मेहन्दी का उत्पादन क्षेत्रफल 41282 हैक्टेयर रहा था। इसके प्रति हैक्टेयर में मेहन्दी के रोपण से कटाई व मण्डी तक ले जाने में 100 कार्य दिवस की आवश्यकता है और मेहन्दी की 180 इकाई है और प्रति इकाई औसत 50 लोगों को रोजगार प्रदान करती है। इस उद्योग में लगभग 150 से 200 करोड़ रु. की पूँजी निवेशित है। इसके उत्पादों का विदेशों में निर्यात होता है। अतः मेहन्दी उद्योग का राजस्थान राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। यह उद्योग ना सिर्फ रोजगार उपलब्ध कराता है बल्कि अपने उत्पाद के निर्यात से विदेशी मुद्रा के अर्जन में भी सहायक है।

“आपणो देश महान, राजस्थान रे सोजत की निराली भान।

देश-विदेश करे गुणगान, मेहन्दी बढ़ावे सवायौ मान।।”

मेहन्दी भारत वर्ष में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में आदिकाल से उपयोग में लाई जाती रही है। यँ तो यह पौधा ईरान मूल का है, परन्तु अब मिस्र, अफ्रीका, अरब, पाकिस्तान व भारत में इसकी काफी बड़े स्तर पर खेती की जाती है। भारत वर्ष में हर धर्म के लोग इसको हाथों-पैरों पर अनादिकाल से श्रृंगार के रूप में लगाते आ रहे हैं। बालों को रंगने में भी इसका बहुतायत में उपयोग हो रहा है।

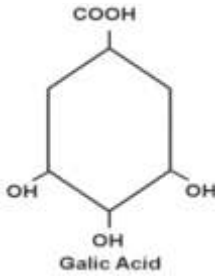
मेहन्दी के पुष्पों से इत्र भी प्राप्त किया जाता है जिसे “हिना” कहते हैं। आज हिना विश्व के अत्यधिक महँगे इत्रों में से एक

है। मेहन्दी के पत्तों, छाल, फल और बीजों का उपयोग विभिन्न औषधियों के निर्माण में भी किया जाता है।

मेहन्दी का एक नाम लासौन भी है। यह अफ्रीका और एशिया में अधिक पायी जाती है। सूडान, इजिप्ट और भारत में सर्वाधिक मात्रा में पायी जाती है। यह किसी भी मिट्टी में उगाई जा सकती है तथा मेहन्दी को उगाने के लिए बीज और डाली का उपयोग किया जाता है। मेहन्दी त्वचा रोग, सिरदर्द, पीलिया आदि रोगों को ठीक करने के काम में आती है।

स्त्रियाँ इसके पत्तों का लेप नख एवं हस्ततल पर रंगने हेतु करती हैं। पुष्पों में मदकारी सुगन्ध होने से इसे “मदयन्तिका” कहते हैं। मेहन्दी के पौधे झाड़ीदार होते हैं और शाखाएँ काँटेयुक्त नुकीली होती हैं। पुष्प हरिताभ श्वेत, गुच्छों से सुगन्धित शाखाग्र खिलते हैं। फल गोल तथा कई बीजों वाले होते हैं। इसकी पत्तियाँ, फूल और फल सभी अंग विभिन्न प्रयोजनों में उपयोग में लिए जाते हैं।

मेहन्दी में Lawsonia inermis, Quinoids, Nephthalene, Galic Acid etc पाये जाते हैं।



### मेहन्दी में पाये जाने वाले तत्व

1.	Tannin %	11.12
2.	Non Tannin %	22.64
3.	Total Soluble %	33.76
4.	Total Solid %	36.72
5.	Insoluble %	56.66
6.	Moisture %	9.58
7.	PH	4.5
8.	Color Red	1.7
9.	Lovibond Tentometer Yellow	2.8

### मेहन्दी के उत्पादन में पूँजी की उपलब्धता

पाली जिले में मेहन्दी की व्यवसायिक खेती 41282 हैक्टेयर क्षेत्र में होती है। इसके प्रति हैक्टेयर लगाने का

खर्च 24-25 हजार रु. होता है एवं बाद में 10-15 हजार रु. प्रति हैक्टेयर खर्च करने से अच्छी फसल प्राप्त हो जाती है अर्थात् एक प्रकार से इसके आरंभ में लगाने की स्थायी लागत होती है। सन् 2015-16 में 41282 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में प्रति हैक्टेयर 24-25 हजार रुपए लगाने की क्षमता के हिसाब से 9 से 10 लाख रु. इसकी लागत पूँजी व इसके पत्तों की खेतों से मण्डी तक लाने के लिए बारदान की प्रति वर्ष 80 हजार से 1.20 लाख रु. की आवश्यकता होती है। प्रति बोरा 20 रु. के हिसाब से 16-24 लाख रु. की पूँजी बारदान के व्यापार में लगी होती है।

### मेहन्दी के उत्पादों के व्यापारीकरण के साधन

एक उत्पादक निम्न माध्यम से अपने उत्पादों को बाजार में बेचता है।

उद्यमी - थोक - विक्रेता - फुटकर विक्रेता - उपभोक्ता

उद्यमी - फुटकर या खुदरा विक्रेता - उपभोक्ता

उद्यमी - उपभोक्ता

### मेहन्दी उत्पादन एवं मेहन्दी उद्योग की चुनौतियाँ

#### 1. अधिक उत्पादकता को सुरक्षित रखना

जब मेहन्दी का सामान्य से अधिक उत्पादन हो जाता है तो किसानों के पास मेहन्दी को सुरक्षित रूप रखने के लिए गोदाम व स्थान नहीं होने के कारण सस्ते मूल्य पर बेचना पड़ता है क्योंकि मेहन्दी के पत्तों में हल्की नमी से भी इसके रंग में परिवर्तन होने का भय बना रहता है और जिसकी कीमत बाद में बहुत कम रह जाती है।

#### 2. प्रशिक्षित श्रमिकों का अभाव

अत्यधिक मेहन्दी की उत्पादकता के समय मेहन्दी की कटाई व खेराई के लिए प्रशिक्षित व कार्य अनुभव व्यक्ति नहीं मिलने से सामान्य से दो-तीन गुना अधिक मजदूरी पर कार्य करवाना पड़ता है क्योंकि अच्छी मेहन्दी की फसल के समय मेहन्दी का पोधा मोटा व काँटेदार हो जाता है जो बहुत तेज धारदार दाँतेड़े से कटता है। इसमें बहुत अधिक शक्ति तथा कुशलता की आवश्यकता होती है, थोड़ी सी लापरवाही से अपने या साथी मजदूर के हाथ या पैर पर चोट लगने या पूर्ण रूप से कट जाने का अंदेश बना रहता है।

#### 3. स्वयं के घरेलू बाजार में नये प्रतियोगी का प्रवेश

बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण स्थानीय लोगों व उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण (L.P.G.) की आर्थिक

नीतियों के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रवेश भी सम्भव है, जो स्थानीय उद्यमियों के लिए चुनौती प्रस्तुत कर सकती है। इसके लिए उन्हें हमेशा तैयार रहना चाहिए।

#### 4. प्रतियोगियों के साथ मूल्य संबंधी प्रतियोगिता

इसी क्षेत्र के उद्यमियों के द्वारा उत्पादों और माल के मूल्य में कमी करके मूल्य संबंधी प्रतियोगिता शुरु की जा सकती है जिससे वे बाजार में लम्बे समय तक स्थायी रह कर अन्ततः एकाधिकार स्थापित कर ले। इस गम्भीर चुनौती के द्वारा प्रतियोगिता उद्यमी अपने विपक्षी उद्यमी को रास्ते से हटा सकते हैं अन्यथा घाटा (हानि) करवा सकते हैं।

#### 5. किसी प्रतियोगी द्वारा नवीन, अभिनव उत्पाद या सेवा प्रस्तुत करना

बाजार में नया व अभिनव उत्पाद उतार कर प्रतिस्पर्धी प्रस्तुत की जा सकती है। ऐसे में प्रत्येक उद्यम को बाजार की मांग के अनुसार अपने उत्पादों को परिवर्तन करने की चुनौती का सामना करना पड़ता है।

#### 6. उत्पादित उत्पाद या सेवा पर सरकार द्वारा टैक्स लागू करना

सरकार ने अपनी आय बढ़ाने के स्रोत को बढ़ाते हुए सेवा कर के दायरे में अधिकांश उद्यमियों को अपनी चपेट में ले लिया है जिससे प्रत्येक उद्योग को अपने आर्थिक लेखा-जोखा तैयार रखने की चुनौती का सामना करना पड़ता है।

#### 7. सामरिक विपणन

अधिकांश विपणन के माध्यमों पर प्रतियोगियों, विशेषकर बड़े उत्पादों का एकाधिकार है और वे स्वयं भी विपणन के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। उनके लिये कई बड़ी विज्ञापन एजेन्सियाँ भी कार्य कर रही हैं और उनका विज्ञापन बजट भी लाखों रुपये में होता है। विपणन के कार्यों में कई स्तर पर अनेक एजेन्सियाँ कार्य करती हैं। जिनको यह उत्पादक भारी मात्रा में कमीशन देते हैं। इस प्रकार के सामरिक विपणन ने छोटे व मध्यम व्यापारियों के लिये बजट में बने रहने की चुनौती खड़ी कर दी है।

#### 8. स्थानीय मध्य व्यक्तियों व दलालों के द्वारा

मेहन्दी के पत्तों व पत्ती का स्टॉक कर कृत्रिम कमी पैदाकर मेहन्दी के भाव बढ़वाये जाते हैं जिससे उद्योगों की उत्पादन लागत बढ़ जाती है जबकि बाजार में उत्पादों की कीमत एकदम नहीं बढ़ती है जिससे उद्यमियों को हानि

होने के भय से कम से कम माँग को पूर्ण कर पाते हैं।

#### 9. भौगोलिक पहचान बनाये रखने की चुनौती

सोजत व आस-पास क्षेत्र में बढ़ते शहरीकरण व औद्योगिकीकरण से, मेहन्दी की फसल कम होती जा रही है एवम् इसका फैलाव मारवाड़, रायपुर, जैतारण व बिलाड़ा तहसील की तरफ हो रहा है। इस कारण इसकी गुणवत्ता में कमी एवम् इसके भौगोलिक पहचान के लिये चुनौती खड़ी हो गई है।

#### 10. पेटेन्ट कराने की चुनौती

मेहन्दी उत्पादकों, फर्म मालिकों का कोई केन्द्र स्तरीय संगठन नहीं होने के कारण विश्वस्तर पर सोजत की मेहन्दी की भौगोलिक पहचान बनाने अर्थात् उत्पादन का पेटेन्ट व उसके उत्पादों का पेटेन्ट करवाने की चुनौती भी गम्भीर है।

#### 11. लट व कीट की चुनौती

मेहन्दी की फसल मे लगातार 2-3 दिन बरसात होने तथा हल्की सी नमी से भी कीट व लट मेहन्दी की पूरी खड़ी फसल को खाकर समाप्त कर देते हैं। अभी तक कृषि वैज्ञानिक इसका कोई ठोस जैविक या रासायनिक उपाय नहीं खोज पाये हैं जिससे कि मेहन्दी के पत्ते की गुणवत्ता बनाये रखते हुये कीट व लट के प्रकोप से इन्हें सुरक्षित रखा जा सके।

#### मेहन्दी उत्पादन एवं उद्योग के विकास हेतु सुझाव

उपरोक्त समस्याओं का समाधान कर मेहन्दी की खेती पर आधारित मेहन्दी उद्यम को और अधिक विकसित करने के लिये मेहन्दी की खेती को प्रोत्साहन देना व समुचित सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर किया जा सकता है।

#### 1. मेहन्दी की फसल को बीमा योजना में शामिल करना

मानसून की अनिश्चितता के कारण इस फसल की उत्पादकता कभी कम व कभी अधिक, थोड़े से मानसून खराब होने से फसल पूर्णतः खराब होने का भय बना रहता है। इस व्यावसायिक फसल को बीमा योजना शामिल करने से किसानों को अपनी न्यूनतम लागत प्राप्त होने से हानि नहीं होगी।

#### 2. मेहन्दी के पत्तों का समर्थन मूल्य तय करना

अच्छे मानसून व मौसम में मेहन्दी की फसल की उत्पादकता दो-तीन गुणा अधिक होने से इसकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है व कीमतें गिर जाती हैं। जिससे किसान को अपनी उत्पादन लागत भी प्राप्त नहीं हो

पाती, ऐसे में किसानों का इस फसल के प्रति रुचि बनाए रखने के लिए इसका न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करना चाहिए।

### 3. किसानों को प्रशिक्षित करना

किसानों को फसल में लगने वाले 'कीट' व 'लट' से बचाव हेतु समय-समय पर प्रशिक्षित करना व कृषि अधिकारी द्वारा देख-रेख करानी चाहिए जिससे फसल को समाप्त व खराब होने से बचाया जा सके।

### 4. ग्राम पंचायत स्तर पर सुविधाएँ उपलब्ध कराना

प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर फसल की देख-रेख हेतु एक कृषि अधिकारी के अधीन स्थानीय लोगों की समिति गठित कर इसकी सूचना लेना व देख-रेख कराना, उत्पादित माल को सुरक्षित रखने हेतु भण्डारण गृहों की सुविधा उपलब्ध कराना, स्थानीय स्तर पर अतिलघु व अल्प समय के लिए ऋण उपलब्ध कराना।

### 5. सहकारी समितियों का विकास करना

मेहन्दी के पत्तों की प्राप्ति, बारदान, वित्तीय समस्या व विपणन समस्या को हल करके वस्तु का उचित मूल्य दिलाने में मदद करने हेतु इन समितियों का विकास करना।

### 6. प्राविधिक सहायता

सरकार लघु उद्योग विकास संगठन के माध्यम से लघु उद्योग अपने माल की जाँच व किस्म में सुधार कर सके एवं मेहन्दी के पत्तों की गुणवत्ता जाँच हेतु, लघु उद्योग मंडल से प्रयोगशाला स्थापित कराना।

### 7. कृषि मण्डी का विस्तार करना

सरकार को कृषि मण्डी में भण्डारण गृहों, गोदामों व टीन शैड की सुविधा का विस्तार करके उनके उत्पादित माल को सुरक्षित रखने व इन कृषि उत्पादों को उद्यम केन्द्रों तक पहुँचाने में सीधे तौर पर कृषकों की सहभागिता को सुनिश्चित करना ताकि बिचौलियों, स्थानीय मध्यम व्यक्तियों को उन्हें लूटने का मौका न मिले और किसान अपने उत्पाद का समुचित लाभ प्राप्त कर सकें।

### 8. सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना

उद्यमियों, कर्मचारियों व असंगठित क्षेत्र के खेतीहर मजदूरों एवं उद्यम के श्रमिकों में सुरक्षा की भावना को जगाना एवं सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना।

### 9. सस्ती ब्याज दर पर पूंजी उपलब्ध कराना

सरकार को अपनी विभिन्न एजेन्सियों जैसे-स्टेट बैंक, व्यापारिक बैंक, राज्य वित्त निगम इत्यादि के माध्यम से किसानों व उद्यमियों को रियायती दरों पर, अधिक पूंजी तथा साख्र उपलब्ध कराना।

### 10. उत्पादन क्षेत्र सुरक्षित करना

सरकार ने उत्पाद की कुछ किस्में केवल उद्योगों के लिये ही सुरक्षित कर दे व इन किस्मों का माल वृहद उद्योग नहीं बना सके। इस प्रकार प्रत्येक उद्योग में बड़े पैमाने के उद्योग व कुटीर उद्योगों के बीच वस्तु के उत्पादन की किस्म व मात्रा निर्धारित की जा सके। इसमें बड़े व लघु उद्योगों के प्रतिस्पर्धा कम व गुणवत्ता में सुधार हो जायेगा।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम.एल. झिंगन, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली
2. अग्रवाल, माथुर, गुप्ता सहकारी चिन्तन एवं ग्रामीण विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
3. प्रो. अमर्त्य सेन आर्थिक विषमताएं, (अनुवाद : भवानी शंकर बागला), राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
4. ओ. पी. शर्मा भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा, RBSA Publishers, Jaipur
5. मिश्र-पुरी भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिसिंग हाऊस, मुम्बई
6. ए. कलाम, वाई. एस. राजन भारत 2020 नवनिर्माण की रूपरेखा, (अनुवाद - हरिमोदन शर्मा) राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
7. प्रो. अमर्त्य सेन आर्थिक विकास और स्वातन्त्र्य, (अनुवाद: भवानी शंकर बागला), राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
8. भारत की अर्थनीति भारत की अर्थनीति (गांधीवादी रूपरेखा), राधाकृष्ण, नई दिल्ली
9. एम. एल. झिंगन विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि. नई दिल्ली
10. अग्रवाल, माथुर, गुप्ता सहकारी चिन्तन एवं ग्रामीण विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर

# पश्चिमी राजस्थान का नाकोड़ा जैन तीर्थ स्थल

डॉ. सुरेश कुमार

सहायक-आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

राजस्थान के अरावली पर्वत श्रृंखला के आडावल पर्वत की गोद में नाकोड़ा स्थित है। इसके एक तरफ रेतीले टीले की ओट है। यह जैन धर्म को श्वेताम्बर समुदाय का स्थल है। इसे जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ कहा जाता है। नाकोड़ा जैन धार्मिक स्थल राजस्थान के बाड़मेर जिले के बालोतरा उपखण्ड से 10 कि.मी. दक्षिण में तथा ऐतिहासिक बस्ती जसोल से 5 किमी पश्चिम में स्थित है। यह धार्मिक स्थल 72 डिग्री पूर्वी देशांतर तथा 25.45 डिग्री उत्तरी अक्षांश पर स्थित है। नाकोड़ा जैन धर्म से सम्बन्धित अति प्राचीन तीर्थ स्थल है। आधारभूत ऐतिहासिक प्रमाण से इसकी प्राचीनता वि.स. 200-300 वर्ष (2200-2300 वर्ष पूर्व) की मानी जा सकती है। अतः नाकोड़ा जैन धर्म के उन प्राचीन तीर्थ में से एक है जो 2000 वर्ष से भी अधिक इस क्षेत्र की खेडपट्टन व मेहवानगर की ऐतिहासिक समृद्धि, एवं सांस्कृतिक धरोहर का श्रेष्ठ प्रतीक है।

**संकेताक्षर:** तीर्थकर, जीर्णोद्धार, मंदिर, पर्यटन, प्रतिमाएं, छतरी।

**ज**नश्रुतियों, दंत कथाओं तथा लोक आख्यानों के आधार पर यह बताया जाता है कि – मालव जैन शासक के पुत्र वीरमसेन एवं नाकोरसेन ने वीरमपुर एवं नाकोर नगर बसाया।<sup>1</sup> मेहवानगर ही पूर्व में वीरमपुर नगर के नाम से प्रसिद्ध था। जो कि वर्तमान में नाकोड़ा के नाम से जाना जाता है तथा नाकोर नगर सिणधरी के समीप नाकोड़ा गाँव से जाना जाता है।<sup>2</sup> वीरमपुर के शासक वीरमदत्त ने ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व आठवें जैन तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभजी का मंदिर बनाया था जिसकी प्रतिष्ठा स्थूलिभद्रसूरिजी द्वारा सम्पन्न करवाई गई। जिसका जीर्णोद्धार कमशः वि. स.पूर्व 189 सम्राट सम्प्रति, वि.स.-35 में उज्जैन के शासक विक्रमादित्य, वि.स. 415 में आचार्य श्री देवसूरिजी, वि.स. 813 में ग्वालियर महाराजा जयसेन ने करवाया।<sup>3</sup>

वि.स. 909 में इस मंदिर के जीर्णोद्धार होने के पश्चात यहाँ मूलनायक के रूप में जैन धर्म के 24 वे तीर्थकर श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा रही। वि. स. 1280 में आलमशाह के आक्रमण के कारण मेहवा राज्य का उपनगर वीरमपुर बुरी तरह उजड़ गया। उस समय जैन मंदिर की सभी प्रतिमाओं को नाकोर नगर में छिपा दिया गया।<sup>4</sup>

वि.स. 1313 में राव वीरम ने वीरमपुर को पुनः बसाया। इसके पश्चात नाकोर नगर (नाकोड़ा गाँव) से यामवर्णी श्री पार्श्वनाथ (23 वे तीर्थकर) की मूर्ति कालाद्रह नागद्रह तालाब से प्राप्त हुई। जिसे वि.स. 1429 में वीरमपुर के मंदिर में मूलनायक के रूप द्वितीय बैशाख वदी 10 को आचार्य श्री जिनोदयसूरिजी ने प्रतिष्ठित की। तब से वीरमपुर का यह मंदिर नाकोड़ा पार्श्वनाथ के नाम से जाना जाता है। वि.स. 1443 वैशाख शुक्ल 13 को मुस्लिम आक्रमण के कारण मेहवा की वीरमपुर पुनः उजड़ गया। तब भी यहाँ के जैन मंदिर की मूर्तियों को नाकोर नगर के कालीद्रह-नागद्रह तालाब में सुरक्षा के दृष्टि से छिपाया गया।<sup>5</sup>

वि.स. 1511 में रावल वीदा ने वीरमपुर को पुनः आबाद किया तब वि.स. 1512 में आचार्य श्री कीर्तिरत्नसूरिजी ने नाकोड़ा गाँव से मूर्ति प्राप्त कर प्रतिष्ठित की। इसके बाद यहां तपगच्छीय श्राविका लाछी बाई ने श्री आदिनाथ की मूर्ति तथा मालाशाह संखलेचा ने अपनी माता की इच्छा से श्री शांतिनाथ की मूर्ति स्थापित की।<sup>6</sup>

17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यहाँ के शासक पुत्र ने नगर सेठ संखलेचा नानक के लम्बे बालों वाली चोटी काटकर अपने घोड़ों पर भिनभिनाती मक्खियाँ को उड़ाने के लिए झंवरी बनाने के निर्णय से भय-भीत होकर नाकोड़ा से जैसलमेर तीर्थ यात्रा का बहाना बनाकर 2700 जैन परिवार एवं अन्य अजैनों के साथ नाकोड़ा छोड़ कर पलायन कर गये। इसके पश्चात उजड़ा नाकोड़ा आज दिन तक पुनः जनबस्ती के रूप में वापिस बस नहीं पाया।<sup>7</sup>

सतरहवीं शताब्दी के उजड़ने में पश्चात वि.स.1960 में तपागच्छ की जैन साध्वी श्री सुन्दर श्री जी ने बड़ी लगन, निष्ठा, परिश्रम, एवं प्रयास के बाद इसका जीर्णोद्धार करवाकर इसकी वि.स. 1991 माघ 13 को तपागच्छ के श्री हिम्मत विजयजी (आचार्य श्री मद्दविजय हिमाचल सूरीश्वरजी) द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई गई।<sup>8</sup> इस प्रतिष्ठा के पश्चात जैन तीर्थ नाकोड़ा पार्श्वनाथ उत्तरोत्तर प्रगति एवं विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा है।

**वि.स. के अनुसार नाकोड़ा मंदिर के विकास के चरण-**

1. वि.स. 1512 - लाछबाई द्वारा आदिनाथ मंदिर का निर्माण
2. वि.स. 1519 - सेठ मालाशाह द्वारा शांतिनाथ मंदिर का निर्माण
3. वि.स. 1604 - शांतिनाथ मंदिर का दूसरा सभामण्डल का निर्माण।
4. वि.स. 1614 - नाभि मण्डप निर्माण।
5. वि.स. 1632 - आदिनाथ मंदिर का प्रवेश द्वार का निर्माण।
6. वि.स. 1634 - आदिनाथ मंदिर में चित्रों एवं पुतलियों सहित नये मंडप का निर्माण।
7. वि.स. 1638 - इस मंदिर का नीवं से जीर्णोद्धार।
8. वि.स. 1667 - भूमिग्रह बनाया गया, आदिनाथ मंदिर की श्रृंगार चौकी का निर्माण।

9. वि.स. 1678 - श्री महावीर चैत्य चौकी का निर्माण।
10. वि.स. 1681 - तीन झरोंखों के साथ श्रृंगार चौकी का निर्माण।
11. वि.स. 1682 - नन्दी मण्डप का निर्माण।
12. वि.स. 1910 - शांतिनाथ भगवान की दूसरी नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठित।
13. वि.स. 1916 - चार देवालियों का निर्माण।
14. वि.स. 2046 - श्री सिद्धचक्रजी का मंदिर निर्माण।
15. वि.स. 2050 - मंदिर के अग्रभाग में नवतोरण स्तम्भों का कार्य निरन्तर जारी।
16. वि.स. 2072 - अंजनशलाका निर्माण कार्य<sup>9</sup>

नाकोड़ा जैन तीर्थ के मंदिर 500 वर्षों से अधिक प्राचीन है। यहाँ की मूर्तियों में नाकोड़ा पार्श्वनाथ की मूर्ति 10 वीं शताब्दी की है। इसके अतिरिक्त 1090 की पार्श्वनाथ पंचतीर्थों की मूर्ति, 12 वीं शताब्दी की नेमिनाथ की दो खड़ी मूर्तियाँ, 1203 की शांतिनाथ और नेमीनाथ की खड़ी मूर्तियाँ, 1379 की जिनचन्द सूरी की गुरुमूर्तियाँ आदि प्राचीन मूर्तियाँ हैं।

नाकोड़ा जैन तीर्थ के शिलालेखों और मूर्तिलेखों के आधार से राठौड़ों की वंशावली, वीरमपुर की स्थापना, मेहवा और वीरमपुर का सम्बन्ध आदि ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसकी सहायता से इतिहास की बिखरी हुई कई कड़ियों को जोड़ा जा सकता है। अतः इतिहास के दृष्टिकोण से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण है।

**पर्यटन की दृष्टि से नाकोड़ा जैन मंदिर सूची**

1. श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ का मंदिर
  - श्रीजगवल्लभ पार्श्वनाथ का मंदिर
  - नाकोड़ा श्री पार्श्वनाथ मूर्ति (श्याम वर्ण)
  - श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ मूर्ति
2. श्री श्याम पार्श्वनाथ जी साल मन्दिर
  - सरस्वती देवी की खड़ी आदमकद मूर्ति
  - चक्रेश्वरी देवी की मूर्ति
  - श्री पदमावती देवी की मूर्ति
  - श्री हितविजयसूरीजी की मूर्तियाँ

- श्री स्वरूप श्री एवं श्री सणगार श्री जी की चरण पादुकाएँ
  - सप्तफणा पार्श्वनाथ जी की मूर्ति
3. श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ पंचतीर्थी मंदिर
- श्री शान्तिनाथ जी की मूर्ति
  - श्री पार्श्वनाथ जी की मूर्ति
  - श्री आदेश्वर जी की मूर्ति
  - श्री महावीर स्वामी की मूर्ति
  - श्री नेमिनाथ जी की मूर्ति
4. श्री केशर वाली जैन साल
- श्री गणेश मूर्ति
  - जैन प्रतिमाएँ
  - यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाएं
5. नाकोड़ा अधिष्ठायक श्री भैरवदेव मंदिर
6. आचार्य कीर्तिरत्नसूरिजी मंदिर
- आचार्य श्री कीर्तिरत्नसूरिजी गौख
7. आदिनाथ जी का मंदिर
- श्री आदिनाथ की मूर्ति
  - श्री शान्तिनाथ की कांस्य प्रतिभा
  - हस्तिरुद्ध श्री मोरादवी माता प्रतिभा
  - श्री नेमीनाथ जी कांस्य प्रतिमा
  - मंदिर के पार्श्व में मूर्ति कला की अनेक प्रतिमाएं (गांधार कला)
8. श्री पुण्डरीक स्वामी का मंदिर
9. श्री आदिनाथ की छतरी
- आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा
10. श्री मल्लिनाथजी का चौमुखी जैन मंदिर
- मंदिर में चौमुखी छतरी
  - जैन तीर्थकरों की 24 मूर्तियां
11. श्री शान्तिनाथ जी का जैन मंदिर
12. चित्र पट्टशाला
13. श्री सिद्धचक्र जैन मंदिर
- श्री महावीर स्वामी मूर्ति
  - श्री पाल राजा की मूर्ति
  - मयणा सुन्दरी की मूर्ति (हाथों में पूजा कलश लिये हुए)
14. भगवान महावीर स्मृति भवन
15. दादा श्री जिनदत्तसूरिजी दादावाडी

16. नाकोड़ा अष्ट मंगल कलश स्तम्भ
17. सोलह विद्या देविया का मंदिर
18. श्री काला भैरव की छतरी
19. श्री लक्ष्मी सूरिजी गुरु मंदिर
20. श्री नेमीनाथ की टूंक
21. सेलावत तालाब
22. राणी रूपादेजी का देवल
23. श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ जैन ज्ञानशाला
24. श्री नाकोड़ा रणछोडरायजी का मंदिर
25. श्री नाकोड़ा का भूतेश्वर महादेव जी मंदिर
26. हनुमान की गोख
27. श्री नाकोड़ा भैरव सर्किल<sup>10</sup>

पश्चिमी राजस्थान का नाकोड़ा जैन तीर्थ स्थल पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस तीर्थ में पर्यटन से सम्बन्धित ऐतिहासिकता, मन्दिर स्थापत्य मंदिर वास्तुकला, मूर्ति कला आदि सभी तत्व उपस्थित हैं। इस जैन धार्मिक स्थल की जानकारी उपलब्ध करवाकर यहाँ पर पर्यटन की सम्भावनाओं को बढ़ाया जा सकता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भूरचन्द जैन- जय श्री नाकोड़ा पेज न. 31-32
2. चम्पालाल पारख - श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ-जैनम् श्री पेज न. 01
3. भूरचन्द जैन - वहीं पेज न. 32  
नाकोर नगर- बाइमेर जिले के सिणधरी कस्बे के नाकोड़ा गाँव के कालीद्रह - नागद्रह तालाब में छिपाया गया।
4. भूरचन्द जैन- जय श्री नाकोड़ा पेज न. 32
5. वहीं - पेज न. 33
6. जैन शिलालेख - वि.स. 1512, नाकोड़ा मंदिर
7. भूरचन्द जैन - जय श्री नाकोड़ा पेज न. 33
8. शिलालेख वि.स. 1991 - नाकोड़ा मंदिर
9. सारणी - विक्रम संवत् के अनुसार नाकोड़ा जैन तीर्थ के विकास के चरण-जैनम् श्री पेज न. 51-55
10. जैन मंदिर नाकोड़ा - मंदिर सूची नाकोड़ा जिनालय-जैनम् श्री पेज न. 62-68

# भक्तिकालीन बाजारवाद और भक्ति

मनीष पटेल

शोध छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

भारतीय मध्यकालीन समाज और संस्कृति की समझ रखने और समझने की कोशिश करने वाले हरेक अध्येता की नज़र इस ओर जाती है कि बाज़ार भक्तिकालीन कवियों के बात करने का एक ख़ास बिन्दु रहा है। जहाँ ये कवि बाज़ार को सबसे अधिक जनतांत्रिक जगह के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं, चाहे वे कबीर रहे हो रैदास हो या फिर तुलसी। ये कवि हमें होशियार भी करते हैं कि बाज़ार में सारी भौतिक चीज़ें बिक रही हैं आप उन्हें खरीद सकते हैं मगर प्रेम आप नहीं खरीद सकते। ये कवि प्रेम की लगातार वक़ालत करते हैं। इनके पास दुनिया को ख़ूबसूरत बनाने का एक ही रास्ता है- प्रेम। वे बताते हैं कि कैसे ये भौतिक चीज़ें मनुष्य के प्रेम को ब्रह्म यानी ज्ञान या मानवता के रास्ते में रोड़ा बन जाती हैं। साथ ही कैसे भौतिक चीज़ें आज अपनी पाँव तेजी से पसारी जा रही हैं।

संकेताक्षर : भक्ति, बाज़ारवाद, माया, लोक, भक्ति-आन्दोलन।

**हि**न्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल एक ऐसा कोना है जब भक्ति को एक आन्दोलन की संज्ञा दी गई। वैसे तो भक्ति किसी पर निर्भरता को दिखाता है लेकिन इस समय भक्ति एक विचार बन गया था। जहाँ आन्दोलन में तर्क प्रधान होता है वहीं भक्ति में भावना लेकिन, इस समय लोग खुद पर निर्भर होने लगे। इस काल में अधिकतर लोग अपने लिए भोजन और कपड़े खुद से तैयार करते थे। यहाँ लोगों में व्यापार की भावना तेजी से बढ़ी। वे कपड़े तथा खाने-पीने की चीज़ें बाज़ार में बेचने के लिए जानवरों पर लादकर ले जाने लगे। इस बढ़ते बाज़ारवाद ने भक्ति को भी बीच चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। इस वक़्त तक बाजार अक्सर किसी मंदिर, मस्जिद, चर्च या नदी के किनारे लगा करते थे, धीरे-धीरे लोगों ने प्रतिदिन घर आने-जाने से बचने के लिए रात को वहीं रुकना शुरू कर दिया, इन बाजारों की ख़ास बात यह भी होती थी कि यहाँ व्यापार के साथ-साथ लोककला, नृत्य, जादू-टोना और झाड़ू-पूँक करने वाले भी होते थे। यह बाजार स्थानीय लोगों के द्वारा ही नहीं वहाँ के शासकों और दिग्गजों द्वारा संचालित किए जाते थे। बाजार का रूप ज्यों-ज्यों बढ़ा होता गया त्यों-त्यों दूर से भी व्यापारी अपने सामानों को लेकर आने लगे तथा दूर के ग्राहकों को भी वे आकर्षित करने लगे। यही विक्रेता एक बाज़ार से दूसरे बाज़ार की यात्रा करने लगे। इतना ही नहीं अन्त में इनमें मनोरंजन और पशुओं के प्रदर्शन भी जुड़ गये।

मध्यकाल में बाज़ार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं तक ही सीमित था। अकबर ने अपने शासनकाल में महिलाओं के लिए अलग बाज़ार खुलवाये जिन्हें मीना बाज़ार के नाम से जाना जाता था, जिसके सन्दर्भ में सुधा मित्तल ने लिखा है कि, “मीना बाज़ार को लेकर रूढ़िवादी हिन्दुओं ने अकबर की नीयत पर आलोचनात्मक वार किए थे। ‘आईने अकबरी’ के अनुसार, यह बाज़ार हर महीने के तीसरे दिन आगरा के किले में लगता था। यह जनाना बाज़ार था। जिस दिन यह लगता था उस दिन को ‘खुशरोज’ कहा जाता था। वास्तव में अकबर चाहता था कि स्त्रियाँ भी आज़ाद हों, खुलकर मिलें-जुलें। इसलिए बाज़ार में बेचनेवाली और खरीदनेवाली औरतें ही होती थीं। कभी-कभी बादशाह और अमीर भी इसकी सैर करते थे।” इससे

पता चलता है कि महिलाओं की स्थिति ठीक थी और वे आत्मनिर्भर भी थीं।

इस समय मेले बाज़ार की तुलना में बड़े होते थे। बाज़ार की अपेक्षा मेले उस वक़्त भी कम लगते थे। इसमें पैदल या घोड़े पर सामान लादकर लोग बहुत दूर तक आते थे। मेले में कीमती धातुएँ, पत्थर, सिल्क, मसाले और इत्र भी बिकते थे। इसके अलावा यहाँ मनोरंजन के साधनों की भी विविधता थी। कलाबाज, बाजीगर, आग खाने वाले और तलवारबाजी करने वाले भी आते थे। कुश्ती और शक्ति प्रतियोगिताओं के साथ गायक और संगीतकार भी इन मेलों में आते थे।

मध्यकाल में बाज़ार और मेले में पूजा अर्चना करने का भी स्थान होता था, जहाँ संत और भक्त आते थे। वहाँ उपदेश और प्रवचन भी दिए जाते थे और लोग बैठकर चाव से सुनते थे। भक्त वही हो सकता है जिसने अहंकार पर विजय प्राप्त कर लिया हो। एक सच्चा भक्त अपने को दीन, मलीन, गरीब, अनाथ, गुण-विहीन, छली, हीन, तुच्छ, अपराध का सागर, पराधीन, कायर और आलसी जैसे तमाम न जाने कितने दुगुणों से परिपूर्ण मानता है, और यही एक सच्चे भक्त के लक्षण भी हैं। मध्यकालीन कवियों के यहाँ ये सारे लक्षण मौजूद हैं। तभी तो तुलसीदास ने उन सभी विषयों को त्यागने के लिए मन को दृढ़ किया है जो राम-भक्ति के प्रतिकूल पड़ते हैं। और वह कहते हैं कि-

कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागी है।

- विनयपत्रिका, पृष्ठ संख्या: 225

मध्यकाल में बाज़ार जनसमूह के मिलन का केन्द्र होता था। उसका सम्बन्ध हमारी सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ था। कबीर अपनी इसी सांस्कृतिक विरासत के साथ हमारे साथ आते हैं। वह अपनी विद्रोही चेतना को बाज़ार में लेकर जाते हैं, कबीर पुरानी मान्यताओं की निंदा करते हैं। तभी वह कहते हैं-

**कबीरा खड़ा बज़ार में लिए लुकाठी हाथ  
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।**

- कबीर ग्रंथावली

कबीर धर्म, जाति, सम्प्रदाय और वर्ण से परे सच्ची इंसानियत की बात करते हैं तभी “कबीर समझौते का रास्ता छोड़कर विद्रोह का रास्ता अपनाते हुए निर्गुण भक्ति की जो धारा भक्ति-आन्दोलन की स्रोतस्विनी से

फूटी, कबीर उसकी सबसे ऊँची लहर के साथ सामने आए। ...विद्रोह और क्रान्ति की ज्वाला उनकी रग-रग में व्याप्त थी। सिर पर कफन बाँधकर, अपना घर फूँककर वे अलख जगाने निकले थे। वे लुकाठी लिए सरे बाजार गुहार लगा रहे थे।” इस काल में महिलाओं के लिए चरखा चलाने का काम प्रमुख माना जाता था। जिसके सन्दर्भ में इरफान हबीब ने बताया है कि, “औरत (वही) अच्छी है जो हर समय चरखा चलाती रहे, क्योंकि उच्च पद उसे अपने उद्देश्य से विमुख करता है। ...इस सन्दर्भ से पता लगता है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में चरखा औरतों का काम करने का एक सामान्य उपकरण था।” कामकाजी महिलाओं की स्थिति समाज में बेहतर थी।

कबीर बाज़ार को सभी भावनाओं से परे एक अलग दुनिया मानते हैं। तभी वह कहते हैं कि-

**कबीरा खड़ा बज़ार में सबकी मांगे खैर,  
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।**

- कबीर ग्रंथावली

वहीं मध्यकाल के एक अन्य कवि मलूकदास ने आलसियों के लिए कुछ न करने वाला दोहा लिखा और उनके सामने जानवरों और पशु पक्षियों के उदाहरण प्रस्तुत किए तथा राम के भजन को सर्वोपरि माना। यदि बाज़ार का सम्बन्ध श्रम से है तो मलूकदास ने भी एक अलग नज़र से बाज़ार को देखने के लिए बाध्य किया और कहीं न कहीं उसकी निर्भरता को कम किया। बाज़ार के संबंध में कबीर की नज़र इतनी पैनी की उनसे कुछ भी नहीं छूटता। बाज़ार में जीवन के सभी भौतिक संसाधन मौजूद हैं लेकिन जीवन का सार तत्व प्रेम बाज़ार में नहीं है। जिसकी चिन्ता जताते हुए कबीर कहते हैं कि-

**प्रेम न बाड़ी ऊपजैए प्रेम न हाट बिकाय।**

**राजा परजा जेहि रूचौए सीस देइ ले जाय।।**

वही तुलसीदास ने मध्यकालीन जनता की स्थिति उसकी दरिद्रता, उसके रोग, दुःख-शोक के बीच राम को स्थित किया है। तुलसीदास का युगीन सन्दर्भ यह है कि पेट के लिए अपने बेटा-बेटी को बेचनेवाली इस मूर्ख दरिद्र और रुग्ण जनता से उन्होंने राम को जोड़ दिया। तुलसी ने भक्त को बाज़ार से जो संसारिक मोह माया का प्रतीक था उससे काटकर उसे लोकान्मुखी बना दिया।

**“ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,  
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।**

तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें,  
आगि बड़ावगि तें बड़ी है आगि पेट की।”

- अनभै साँचा

तुलसी और कबीर के बाज़ार में यही मूलभूत अन्तर दिखाई पड़ता है।

जैन कवि बनारसीदास का बाज़ार इस सब से अलग जान पड़ता है जब वे अपने आत्मचरित में संवत् 1660 के आसपास अपनी इश्कबाजी वाली जीवनचर्या का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उस समय मैं हाट बाज़ार जाना छोड़, घर में पड़े पड़े ‘मृगावती’ और ‘मधुमालती’ नाम की पोथियाँ पढ़ा करता था-

“तब घर में बैठे रहैं, नाहिंन हाट बाजार।  
मधुमालती, मृगावती पोथी दोष उचार।।”

इससे जान पड़ता है कि, बाज़ार लोगों की दिनचर्या का हिस्सा था, और उनकी उस पर निर्भरता बहुत ज्यादा थी। जायसी लोक के कवि हैं और उनके यहाँ कविता में आत्मा और परम सत्ता के प्रति एक रहास्यात्मक जुड़ाव है। जायसी के यहाँ कविता बहुत वैयक्तिक है, इसीलिए वो काव्य को बाज़ार में लेकर नहीं जाते हैं।

झिलमिल झगरा झूलते बाकी रही न काहु।

गोरख अटके कालपुर कौन कहावै साहु ?

बहुत दिवस तम हिंडिया सुनि समाधि लगाइ।

करहा पड़िया गाड़ में दूरि परा पछिताइ।।

आधुनिक बाजारवाद के सन्दर्भ में जर्मन चिन्तक हर्मन हेस (Hermann Hesse) कहते हैं कि, “लालच की आँख चीजों को देखने के हमारे कोण को बदल देती है। यदि मैं जंगल को इस नीयत और इरादे से देखूँ की मैं जंगल को खरीद लूँ या किराए पर उठा दूँ या फिर उसे कटवा कर महँगे दामों में बाजार में बेच दूँ तो फिर मैं एक जंगल को नहीं देख रहा, बल्कि मैं जंगल को अपने निहित प्रयोजन या जेब के हवाले से देख रहा हूँ। जंगल को देखते हुए मेरे मन में यदि इस तरह की कोई ख्वाहिश पैदा होती है तो फिर जंगल मेरे लिए वनस्पतियों का जीता जागता संसार नहीं रह जाता बल्कि एक कारोबारी मंजर भर रह जाता है।” यह बात किसी उत्पाद, मानव सम्बन्ध, साहित्य या जीवन से जुड़ी किसी भी चीज से हो सकती है। आवश्यकता से आगे लोभ तथा लालच की नजरिए से देखा जाना तथा संवेदनशीलता का समाप्त हो जाना ही बाजारवाद हैं। इसीलिए कबीर बार-बार बाज़ार को मोह माया का असीम सागर बताते हैं।

इन सब से इतर हम देखते हैं कि भूमंडलीकरण का सीधा संबंध बाजारवाद से है, और बाजार का भाषा से, यही कारण है कि भूमंडलीकरण की भाषा का प्रसार हो रहा है तथा मातृभाषाएँ या क्षेत्रीय बोलियों का दायरा सिकुड़ रहा है। बाजारवाद ने हमारी लोकपरंपरा व संस्कृति को बहुत प्रभावित किया, उसी का प्रभाव है कि आज ‘ठंडा मतलब कोका कोला’ हो गया है। बाजार ने लोगों में एक भ्रम और डर की भावना पैदा कर दी है उसने घरेलू वस्तुओं या उत्पादों को बेकार करार दिया है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है कि बाजार ने प्राकृतिक संसाधन पानी के बारे में यह दुष्प्रचार कर दिया है कि, नल और कुओं का पानी बेकार है जिससे बोतल बंद पानी की धड़ल्ले से बिक्री शुरू हो गयी। हमारे ऊपर बाजार इतना हावी हो गया है कि विज्ञापनों की भाषा हमें सच्ची लगने लगी है हमने खुद से सोचना बंद कर दिया है यानी हम बाजार के गुलाम बन गए हैं। बाजार का कब्जा व्यक्ति के मानसिक संतुलन तक पहुँच गया है।

बाजारवाद से ही उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला है। उपभोग और उत्पाद की अवधारणा हमेशा से विद्यमान रही है, किन्तु उसके स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आरंभ में मनुष्य कंदमूल फल खोजकर इकट्ठा कर खाने तथा जीव-जन्तुओं का शिकार कर अपना भोजन जुटाता था इस प्रक्रिया को उत्पादन कहा गया। तत्पश्चात् उत्पादन का स्वरूप बदला और कृषि एवं पशुपालन प्रमुख हो गए। साथ ही साथ उपभोग में भी बदलाव आया, अब वे प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं का ज्यों का त्यों सेवन करने के बदले उसे पकाकर और नमक आदि के साथ खाने लगे इस प्रकार उत्पादन का पैमाना, चरित्र और स्वरूप उपभोग के अनुकूल बनाने के लिए बदले। इस प्रकार उपभोग सर्जनात्मकता का स्रोत और सामाजिक संबंधों तथा पहचान का आधार बन गया। अब लोगों को एक दूसरे पर निर्भर होना पड़ता था फिर उपभोग के साथ ग्राहक की अवधारणा का जन्म हुआ। 20वीं सदी के मध्य से उपभोग और उपभोक्ता शब्द अर्थशास्त्र की सीमा से बाहर निकलकर आम बोलचाल में आ गया। अब ग्राहक के बदले उपभोक्ता शब्द का प्रयोग होने लगा। रेमंड विलियम्स ने लिखा है कि, “ग्राहक कहने से आपूर्तिकर्ता के साथ उसका नियमित सम्बन्ध व्यक्त होता है जबकि उपभोक्ता शब्द अपेक्षाकृत अमूर्त बाजार में एक निराकार व्यक्तित्व का बोध कराता है।” उपभोक्ता संस्कृति के फलने-फूलने से गाँव के

सीधे-सादे लोग साधनों की कमी के बावजूद कैप्टन कुक आटा, टाटा नमक, रिन डिटरजेंट, किन्ले और बिस्लेरी का पानी, अंकल चिप्स, मैगी और हॉट डॉग तक खाने लगे हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह साफ है कि मध्यकाल में बाजार के कई रंग थे। इस काल के कवियों ने बाजार को अपने हिसाब से पारिभाषित भी किया है। जहाँ बाजार कबीर के लिए माया है वहीं तुलसी के लिए लोक का प्रतीक। यह महिलाओं की आजादी का केन्द्र भी था और मध्यकाल की जड़ता के खिलाफ भी।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दास, श्याम सुन्दर (सं.) (2016), कबीर ग्रंथावली, नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान।
2. मित्तल, सुधा (2006), हिन्दी कथा-साहित्य में मध्यकालीन भारत, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 65-66
3. मिश्र, शिवकुमार (2005), भक्ति-आन्दोलन और भक्तिकाव्य, इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 56-57
4. हबीब, इरफान (सं.) (2012), मध्यकालीन भारत-1, प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और समाज, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 25
5. शुक्ल, रामचन्द्र (2003), हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाराणसी : नागरीप्रचारिणी सभा, पृष्ठ सं. : 54
6. मिश्र, गिरिश (2013), उपभोक्तावाद की पृष्ठभूमि, [Online web] Accssed 26th Feb. 2016 URL : <http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/3856/10/0>
7. फारुकी, अमर (2003), प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएँ और संस्कृतियाँ, अनुवाद द्वारा शाहिद अख्तर, दिल्ली : प्रन्थ शिल्पी।
8. मुक्तिबोध, गजानन माधव (1999), नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
9. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (1970), मध्यकालीन धर्म साधना, इलाहाबाद : साहित्य प्रकाशन।
10. सिंह, गोपेश्वर (संपादक) (2002), भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, नयी दिल्ली : भारतीय प्रकाशन संस्थान।
11. मिश्र, भगीरथ (1973), महाकवि तुलसीदास और युग सन्दर्भ, इलाहाबाद : साहित्य भवन।

# बैगा जनजाति में जादू टोना एवं टोटके

कृष्ण कुमार तिवारी

शोध छात्र, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

बैगाओं का जादू-टोने में भी अंधविश्वास देखा जाता है इनके शमशान गाँव से बाहर होते हैं तथा जादू-टोने की गतिविधियाँ भी गाँव से बाहर ही की जाती हैं। बैगा जनजाति मध्य प्रदेश की विशेष पिछड़ी जन-जातियों में से एक है। यह जनजाति जादू, भूत-प्रेत, आत्मा तथा 'टोना-टोटका' में भी विश्वास रखती है। बैगा जनजाति में जादू-टोना एवं टोटके सम्बन्धी क्रिया संबंधी अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश के सीधी जिले के बैगा परिवारों में 40 परिवारों के स्त्री एवं पुरुष का जादू टोना संबंधी कारणों एवं क्रियाओं का अध्ययन उद्देश्य मूलक निदर्शन विधि द्वारा किया गया। जिसमें जादू-टोना संबंधी विचार को जाना गया और पाया गया कि बैगा जनजाति की स्त्री एवं पुरुष में जादू-टोना संबंधी विचार समान हैं। ग्रामीण अथवा जनजाति परिवेश में जादू-टोना पर विश्वास संस्कृति से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है।

**संकेताक्षर:** बैगा जनजाति, जादू-टोना, टोटके, भूत-प्रेत, परम्पराएँ, अन्धविश्वास।

**भा**रतीय उपमहाद्वीप में कई पिछड़े इलाकों में चुड़ैल आदि के आरोप लगाकर महिलाओं को सार्वजनिक रूप से सजा देने की प्रथाएँ विद्यमान हैं। इसे भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न नामों से जाना जाता है यथा चुड़ैल, डायन, डाकिनी, डाकण आदि। मानव को सृष्टि काल के आरंभ से ही विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं तथा विषम परिस्थितियों से रुबरु होना पड़ा है। वह जिज्ञासा वश इन परिस्थितियों के कारणों को जानने का प्रयत्न करता रहा और प्रायः ऐसी परिस्थितियों के समक्ष अपने को असमर्थ तथा दुर्बल पाता रहा। अंततोगत्वा मानव तांत्रिक विधियों का प्रयोग कर या तो इन प्राकृतिक तथा अलौकिक शक्तियों को अपने वश में करने का प्रयत्न किया अथवा उन्हें अपनी सामर्थ्य से बाहर मानकर उनकी पूजा व आराधना करना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार प्रथम स्थिति में जादू-टोना-टोटका तथा दूसरी दशा में धर्म जैसी संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। आदिम मानव प्रारंभिक समय से ही प्राकृतिक घटनाओं को देखा करते थे तो अवश्य ही यह सोचा करते थे कि इन प्राकृतिक घटनाओं के पीछे अवश्य शक्ति है जिसके कारण यह प्रकृति इतनी चमत्कारपूर्ण है। जीवन जीना और पेट भरना बहुत मुश्किल था और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया। जंगलीपन से सभ्य क्रम की ओर वैसे-वैसे मानसिक विकास भी हुआ। उद् विकासवादी मानव शास्त्री फ्रेजर के अनुसार मानसिक प्रक्रिया के उद् विकास के फलस्वरूप जादू-धर्म तथा विज्ञान की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार इन्होंने The golden bough की रचना की और इस पर प्रकाश डाला। इसी संदर्भ में मैलिनोवास्की की 1948 Magic, Science, and Religion इस पुस्तक में इन्होंने जादू को प्रारंभिक अवस्था बताया इसके पश्चात् धर्म और धर्म के बाद मनुष्य जब स्वयं को बहुत ज्यादा बुद्धिमान मान लेता है तो वह प्रत्येक तथ्य को तर्क से तौलता है तब विज्ञान का जन्म होता है। 1915 The Elementary Forms of Religious Life इस पुस्तक में इमाइल दुर्खीम ने धर्म को एक नशा बताया है लेकिन जादू को अस्वीकार नहीं किया है।

वास्तव में प्रत्येक समाज में चाहे वह जाति हो या जनजाति सभी समाजों में जादू-टोना जैसे शब्द मिल जाते हैं और जिसे कुछ व्यक्ति करते हैं जानते हैं परंतु यह केवल आभासी होते हैं और जादू करने वाला व्यक्ति मंत्रों के द्वारा जादू करता है और मंत्र

किसी देवता से संबंधित होता है। कुछ जादू करने वाले भूत-प्रेत का सहारा लेकर जादू करते हैं। जादू अथवा टोना-टोटका व्यक्तिगत होता है और व्यक्तिअपने स्वार्थ के लिए इसे करता है। वह लाभ अथवा हानि के लिए इसे करता है किन्तु सामान्य व्यक्ति इसके अन्दर छुपे हुए तथ्य अथवा भाव को समझ नहीं पाता क्योंकि यह लौकिक स्तर का नहीं होता।

### अध्ययन का उद्देश्य

- (1) जादू-टोना का बैगा जनजाति के जीवन में क्या मायने रखता है।
- (2) जादू-टोना संबंधी बैगा जनजाति के विचारों का पता लगाना।
- (3) जादू-टोना संबंधी अर्द्धदेवता का स्वरूप मानने की स्थिति का अवलोकन करना
- (4) बैगा जनजाति की संस्कृति में जादू टोना एवं टोटके का अवलोकन करना।

### अध्ययन सामग्री एवं शोध प्रविधि-

शोध विषय से संबंधित जानकारी अवलोकन के साथ अनुसूची-साक्षात्कार के द्वारा लोगों से मिली जानकारी एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं समूह साक्षात्कार से 40 परिवारों के महिला पुरुषों का उद्देश्य मूलक निदर्शन विधि द्वारा सूचनादाताओं का चयन करके सूचना एकत्रित की गयी। प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक सह वर्णात्मक प्रवृत्ति का है।

### अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के सीधी जिले के बैगा जनजातीय बाहुल्य वाला गाँव चमराडोल पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन में बैगा जनजाति के 40 परिवारों का अध्ययन किया गया है। इसी संदर्भ में सीधी जिले के चमराडोल गाँव में बैगा जनजाति की संस्कृति में जादू और टोना-टोटका से संबंधित उन तथ्यों को समझा गया जो अछूते नहीं हैं। बैगा जनजाति में जादू टोना संबंधित क्रियाएं, प्रक्रियाएं एवं मान्यता को जानने का प्रयास किया गया है। जादू सदैव निम्न देवता भूत-प्रेत, मंत्रों एवं विचित्र क्रिया और स्वयं के लाभ तथा अर्द्धदेवता से संबंधित होता है। जिसे फ्रेजर ने आभासी कहा है यह जादू-टोना शब्द में जादू-टोना एक साथ जोड़ते हैं कुछ ये कहते हैं कि जादू से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है पर शहरी समाज में जादूगर जो दिखाता है वो महज एक आइटम या हाथ की सफाई होती है जिसमें विज्ञान का पुट होता है।

किन्तु ग्रामीण परिवेश में और जनजातीय परिवेश में जो जादू-टोना जैसे शब्द होते हैं, वह कुछ अलग संदर्भ लिए होते हैं।

### समस्या का वर्णन

वर्तमान समय में जहां आधुनिक शिक्षा का प्रभाव हो रहा है लोग शिक्षित हो रहे हैं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। फिर भी जनजातीय परिवेश इससे अछूता नहीं है, लेकिन जनजाति समुदाय जो ग्रामीण संरचना का एक अंग है, वे अपनी संस्कृति से जुड़े हुए हैं। अपनी संस्कृति से जुड़े होने के कारण उनमें अंधविश्वास का समावेश हो गया है, किन्तु इसके दृष्टिकोण से वह अंधविश्वास नहीं होकर विश्वास है कि जादू-टोना होता है जिसे कुछ लोग करते हैं।

जिस विश्वास को आधुनिक शिक्षा अथवा आधुनिक प्रौद्योगिकी दूर नहीं कर पा रही है। कारण इनकी शिक्षा की कमी तथा समाज की मुख्य धारा में नहीं होना है। लेकिन शहरी क्षेत्रों में जादू-टोना का अभाव है और ग्रामीण अथवा जनजातीय क्षेत्र में इसका विश्वास विद्यमान है। चूंकि गांवों से ही शहर बने ग्रामीण व्यक्ति शहरों में रोजगार के लिये आया तो अपनी संस्कृति को लेकर आया किन्तु शहर में जादू अथवा टोना जैसे विचार-विश्वास नहीं उभर कर आये चूंकि ग्रामीण क्षेत्र में जादू-टोना के जानकार होते हैं। इसलिये उनके साथ होता है। जो एक व्यक्तिगत अनुभव होता है। इसलिए शिक्षित व्यक्ति भी नहीं चाहकर भी कुछ घटनाओं पर विश्वास कर लेता है। लेकिन मूल समस्या ज्यों कि त्यों बनी हुई है। क्योंकि यदि कोई बीमारी हो तो डाक्टर अथवा वैद्य उसे ठीक कर सकता है। लेकिन उन शक्तियों अथवा अदृश्य कारणों को कोई समझ नहीं सकता। जो देखे अथवा समझे नहीं जा सकते जो अनुभव के तथ्य होते हैं।

### बैगा जनजाति में जादू क्रियाएं

बैगा अपनी जादुई क्रियाओं और अपने संस्कारित मान्यता के लिए एक कौतुहल का विषय है क्योंकि बैगा अपने जीवन में सारी क्रियाएं अपनी मिथक की प्रेरणा से करते हैं। सीधी जिले के चमराडोल गाँव में बैगा जनजाति की कई पीढ़ी से एक साथ रहते हैं इसीलिए देवी-देवता अलग है। बैगा जनजाति की संस्कृति अन्य जनजातियों से अलग है। विवाह, धार्मिक देवता गोत्र अलग हैं। इसी प्रकार जादू-टोना की मान्यता एवं इनके अर्द्धदेवता समान है, और इसकी अवधारणा भी समान है इसी प्रकार बैगा जनजाति की जादुई क्रियाएं एवं अर्द्धदेवता इस प्रकार है।

## 1. चुडैल

चुडैल शब्द जनजाति में मिलता है जिसे टोहनी कहते हैं। जिसे 80 प्रतिशत लोगों ने नहीं देखा पर 20 प्रतिशत लोगों का यह कहना है कि देखा नहीं है, अनुभव किया है। यह चुडैल या टोहनी अर्द्धदेवता को मानती है और अपनी स्थानीय बोली में मंत्र द्वारा टोना लगाती है। यह टोना देखने या छूने से लगता है जिसे पांग देना कहते हैं- इस पांग देना का प्रभाव यह होता है कि व्यक्ति कमजोर हो जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है, पर मृत्यु किसी बीमारी से भी हो सकती है, इनका मानना है कि यह रात में मंत्र पढ़ती है। यह भूत-प्रेत-मसान तीर से शक्तिप्राप्त करती है और जिसे यह पसंद नहीं करती उसके ऊपर जादू-टोना करती है प्रभाव यह होता है कि वह बड़बड़ाने लगता है या छोटा बना हो तो खाना नहीं खाता। पांग (जादू-टोना) लगने पर किसी महिला अथवा पुरुष को ओझा के पास ले जाते हैं। तो चुडैल ने उसे टोना है तो वह झुपने लग जाता है या लग जाती है, और उसके भीतर में जिस महिला ने जादू-टोना किया या वह उसके भीतर से बोलने लग जाती है।

झुपना को बैगा महिला 100 प्रति. मानती है, और बैगा पुरुष 98.88 प्रतिशत स्वीकार करते हैं। लेकिन इसका तार्किक आधार नहीं है। लेकिन सांस्कृतिक सोच के कारण यह उनमें विद्यमान है।

## 2. बैगा-ओझा-शमन

यह पंडित से अलग होता है जो यहां होता है किसी को जादू-टोना भूत-प्रेत चढ़ा हो तो वह अपने मंत्र से ठीक करता है। यह अपने भूत से यह ज्ञात करता है अमुक व्यक्तिको भूत चढ़ा है या टोना हुआ है, क्योंकि वह भूत को मंत्रों के द्वारा वंश में किया होता है, और स्वयं ऐसे मंत्र किसी बैगा अथवा पूर्वज से सीखता है। कोई विद्वान इसकी वास्तविकता ज्ञात नहीं कर पाता क्योंकि इस ओझा के अलावा और कोई नहीं जानता कि इसके ऊपर किसका प्रभाव है।

## 3. रक्शा-रक्शिन

किसी कुंवारी लड़की की मृत्यु होने पर वह रक्शिन बनती है और लड़का रक्शा बनता है। चुडैल इसे बस में करके बच्चों को रोज रात में रुलाती है। रात में इनकी आंखें चमकती हैं।

## 4. मरी-मसान

इनका ऐसा मानना है कि किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाने पर उसे दफनाया जाता है। चुडैल मरी-मसान को उस शव

को खाने के लिए भेजती है और उसकी आत्मा को वश में करके कोठे में रखती है। कुंवारी लड़की जो रोज बीमारी आदि से मरती है मरी कहलाती है। मसान कुंवारा लड़का होता है जो रोग या अकाल मृत्यु से मरता है। चुडैल इसे अपने वश में रखती है।

## 5. चटिया-मटिया

यह चटिया-मटिया ढाई फीट के होते हैं, ये दोनों स्त्री-पुरुष होते हैं ये भूत-प्रेम का एक प्रकार होते हैं बैगा (ओझा) इसे वश में करके किसी के घर में भेजता है और उसके घर की सारी संपत्ति उठाकर ओझा को देते हैं उसके कोठे का धान ओझा को देते हैं और वह व्यक्ति गरीब हो जाता है।

## 6. भूत

जब कोई व्यक्ति दुःखी होकर मरता है तो वह मरने के बाद भूत बनता है इसका पैर उल्टा होता है यह धरती से 5 से. मी. ऊपर चलता है। इसे ओझा वंश में करके नौकर की तरह काम में लेता है।

## 7. प्रेत-प्रेतिन

इनकी मान्यता यह है कि ये इमली पेड़ पर रहते हैं यह भूत से ज्यादा शक्तिशाली है। यह घर में जाकर जुठी थाली में बचा कुचा भोजन करते हैं इसलिए यह मान्यता है कि रात में ही खाना के बाद बर्तन धो देना चाहिए।

माना जाता है कि काला जादू उसे कहते हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने स्वार्थ को साधने का प्रयास करता है या किसी को नुकसान पहुंचाना के काम करता है। बंगाल और असम को काला जादू का गढ़ माना जाता रहा है। काले जादू के माध्यम से किसी को बकरी बनाकर कैद कर लिया जाता है या फिर किसी को वश में कर उससे मनचाहा कार्य कराया जा सकता है। काले जादू के माध्यम से किसी को किसी भी प्रकार के भ्रम में डाला जा सकता है और किसी को मारा भी जा सकता है।

काला जादू शरीर में नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करता है। ये शक्तियां बाहरी व्यक्ति के द्वारा भेजी जाती हैं जो उस व्यक्ति पर आंतरिक प्रभाव डालती है। दरअसल काला जादू मनोवैज्ञानिक ढंग से कार्य करता है। काला जादू करने वाले आपके अचेतन मन को पकड़ लेते हैं। इसका प्रभाव आपके मन पर होता है। काले जादू के अंतर्गत मूठकर्णी विद्या, वशीकरण, स्तंभन, मारण, भूत-प्रेत, टोने और टोटके आदि आते हैं। अधिकतर इसे तांत्रिक विद्या भी कहते हैं।

इसके अलाव बहुत से ऐसे पारंपरिक अंधविश्वास और टोटके हैं जो अंधविश्वास हैं, जो लोक परंपरा से आते हैं जिनके पीछे कोई ठोस आधार नहीं होता। ये शोध का विषय भी हो सकते हैं। इसमें से बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो धर्म का हिस्सा हैं और बहुत-सी बातें नहीं हैं।

### निष्कर्ष

बैगा जनजाति कई पीढ़ियों से साथ-साथ रह रही है। बैगा विशेष पिछड़ी जनजाति है, इसलिए सामाजिक संगठन अन्य जनजाति से अलग है। चूंकि गोत्र विवाह, धार्मिक देवता बैगा जनजाति के अलग हैं। लेकिन कुछ सांस्कृतिक तत्व अन्य जनजातियों के समान हो जाते हैं एक विशेष समय के अंतराल में इसी प्रकार जादू-टोना संबंधी विश्वास भी समान हैं। जादू-टोना के संबंध में कुछ तथ्य ऐसे होते हैं जो तार्किक नहीं होते जो अदृश्य अर्द्धशक्ति होती है-जिसका संचय एक व्यक्ति करता है और इन अर्द्धशक्तिका जुड़ाव मंत्रों से करता है जिसका एक संबंधित नाम होता है।

उस मंत्र के माध्यम से वह अर्द्धशक्ति कार्य करती है जिसका सही अथवा गलत प्रयोग हो सकता है। ऐसा इन लोगों का विचार है जो इनकी संस्कृति से जुड़ा हुआ है। चूंकि वैज्ञानिक दृष्टि से जो अनुभवजन्य नहीं होता वह विश्वास के योग्य नहीं होता लेकिन इनकी संस्कृति में जादू-टोना के प्रति विश्वास इनके संस्कृति से आता है जो इनके विचारों क्रियाओं में परीलक्षित होता है। इसलिए जादू-टोना इनके जीवन में मायने रखता है। इसी प्रकार अदृश्य प्राणी जैसे रक्शा-रक्शान, मरी-मसान, चटिया-मटिया, प्रेत-प्रेतिन, भूत किसी कारण वश अथवा जादू-टोना से मृत्यु होने के बाद व्यक्ति इन योनियों में जाता है, तब वह मानव नहीं रहता इसलिए इनके अन्दर मानवीय गुण विद्यमान नहीं होते। जिसको बैगा या चुड़ैल वश में करते हैं। लेकिन इनके अस्तित्व को यह नहीं नकार पाते।

### सुझाव

जादू-टोना संबंधी विचार प्रत्येक समाज में होते हैं लेकिन वैज्ञानिकता को भी नहीं नकार जा सकता। 50 प्रतिशत से ज्यादा महिला एवं पुरुष निवारण के लिए बैगा के पास जाते हैं। लेकिन बैगा भी कुछ कारणों को ठीक कर पाते हैं और कुछ को नहीं। चूंकि इस समाज और जनजातीय समाज में जादू-टोना जैसी समस्या आम बात है। इसलिए पहले यह देखा जाना चाहिए कि उनकी संस्कृति में यह विश्वास आता है। जादू-टोना के लिए वह बैगा के पास जाते हैं अर्थात् वह उनसे ठीक होने की अपेक्षा रखते

हैं। इसलिए बैगा को जागरूक करके यह प्रशिक्षण देना चाहिए कि कुछ कारणों को ठीक कर सकते इसलिए डाक्टर के पास जाने की सलाह लोगों को देना चाहिए, जिससे इस समस्या का समाधान हो सके। यहां एक मानवशास्त्री की भूमिका यह होनी चाहिए कि वह उसकी संस्कृति को समझ कर इस सामाजिक समस्या से निपटने के लिए एक सामाजिक रूप से उन्हे जगाने का प्रयास कर सकता है क्यों कि उनकी संस्कृति को उन्ही के संदर्भ में समझता है।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. निंग नेल्स (2000) मैजिक एंड शोमैनशिप: अ हैंडबुक फॉर कन्व्युमर्स, मिनिओला, एनवाई: डोवर प्रकाशन इंक।
2. जिम स्ट्राइनमेयर (2003) हाइडिंग द एलिफैंट: हाउ मजिशियंस इन्वेंटेड द इम्पौसिबल एंड लर्न्ड टू डिसेपियर न्यूयॉर्क, एनवाई: कैरोल और ग्राफ प्रकाशक।
3. <https://hi.wikipedia.org>
4. <http://kaaltantra.com/blog/tag>
5. <https://ultimatageyan.com/kala-jadu-hindi/>
6. अरविन्द: उत्तर योगी, लोकभारती प्रकाशन, 1972।
7. ब्रह्मा, एन के फिलास्फी ऑफ हिन्दू साधना, लंदन, 1939।
8. उद्धृत आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, रहस्यवाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद-5, 1973
9. शुक्ल, आचार्य पं. शत्रुघ्न लाल: भारतीय तंत्र विद्या, प्रकाशक: हिन्दी सेवा सदन, मथुरा, संस्करण द्वितीय - 2007।
10. डेविड, गार्डन व्हाईट: तंत्र इन प्रेक्टिस, मोतीलाल बनारसी दास प्रा. लि. दिल्ली, 2000
11. कविराज, गोपीनाथ : तांत्रिक साधन और सिद्धान्त, अनुवाद पं. हंसकुमार तिवारी, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद पटना।
12. शान्ति देव, साधु: एनसाइक्लोपिडिया ऑफ तंत्र, वाल्युम प्रथम, कॉस्मोपब्लिस, नई दिल्ली-1999
13. सागर, प्रमोद: तंत्र-मंत्र एवं टोटके की संयोजन एवं प्रस्तुति की विचित्र पुस्तक, श्री सरस्वती प्रकाशन, अजमेर पत्रिका।
14. तंत्र-मंत्र, यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर, राजस्थान, अप्रैल 2010 सितम्बर 2010।
15. डॉ. शर्मा, बी.डी. आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचन म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल,
16. दास, पी.कुमार- डेवलपमेंट ऑफ ट्राइबल एकोनामी "ए स्पेशल एप्रोज- कुरुक्षेत्र वाल्युम 34(4) जनवरी 1986।

# समकालीन राजस्थानी साहित्य में व्यंग्य की भूमिका

मंदाकिनी शेखावत

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

व्यंग्य असंतोष की वजह से पैदा होता है, परंतु यह संवेदनशील और करुण हृदय में उद्भूत होकर उपजता है। राजस्थानी साहित्य ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य की व्यंग्य विधा भी खुद से ही संघर्षरत अपने यौवनकाल से गुजर रही है जहाँ उसके दिग्भ्रमित होने की गुंजाइश अत्यधिक बनी हुई है। व्यंग्य रचना की कसौटी पर दूसरी शर्त यह भी है कि व्यंग्य कभी वंचित पर प्रहार नहीं करता। समकालीन राजस्थानी साहित्य में व्यंग्य एक प्रतिपाद्य संवेधविधा है। उद्देश्यपरकता उसका प्राणतत्व है। साहित्य की सभी विधाओं में सम्भवतः व्यंग्य, लेखकीय प्रतिरोध का सबसे सशक्त माध्यम है। राजस्थानी भाषा के व्यंग्य का भंडार है। जब से राजस्थानी है तब से इसमें व्यंग्य रचा बसा है।

**संकेताक्षर :** सामाजिक विसंगतियाँ, अखबार, पत्रिका, राष्ट्र, पीड़ा, असन्तोष, दृष्टिकोण, विधा, विद्रूपता।

**स**मकालीन राजस्थानी साहित्य में जिस बड़े अर्थ में व्यंग्य शब्द का प्रयोग आज हो रहा है भारतीय वांग्मय और भारतीय साहित्य शास्त्रों में इसका प्रयोग वक्रोक्ति, उपालम्भ और हास्य के रूप में होता रहा है। समकालीन साहित्य में व्यंग्य बड़े उद्देश्यों से जुड़े हुए प्राणतत्व के रूप में लिया जाता है। राजस्थानी के वरिष्ठ साहित्यकार श्याम सुंदर भारती व्यंग्य के बारे में लिखते हैं “व्यंग्य एक धारदार ने असरदार ऐड़ी सबली विधा है, जकी पाठक रा हिया ताई सीधी ढूके, ने उणरा मन मगज ने घोदावे फम्फेडे अर जगावे। उण री चापल तोड़े अर री ऊंघ उडावे। इणी री खमा है के जको अणहुती अत्याचार, अनाचार ने भ्रीष्ठाचार सांमी पग रोप ने उणने ललकारे, उण रो विरोध करे न आपरी समपूरण खिमता साथै उण रौ मुकाबलों करे ने आखरी दम तक लड़न ही हूस रखै।” व्यंग्य सीधी चीज नहीं है, वह टेढ़ी चीज है। व्यंग्य शब्द में भी यह टेढ़ापन परिलक्षित हो जाता है। व्यंग्य सीधे-सीधे नहीं किया जाता उसके लिए कोई न कोई आड़ चाहिए, कोई तरीका कोई बहाना चाहिए।

इस पर वरिष्ठ व्यंग्यकार मधुकर गौड़ कहते हैं “आज रो आदमी मोटी खाल रो आदमी बणगो है। चाये कितणा ही व्यंग्य लिख मारो बणा पर की भी असर नी पड़े तो भी लेखक समाज में फैल्योड़ी कुरीतियाँ नै आपरे व्यंग्य री मारफत व्यक्त करणे री चेष्टा करे।”<sup>2</sup>

अगर हम राजस्थानी के वरिष्ठ व्यंग्यकारों की बात करे तो उनका व्यंग्य जीवनानुभव पर आधारित है और इसीलिए उसमें वह धारा आ पाई है। चाहे वह हरमन चौहान और नागराज शर्मा हो या फिर बुलाकी शर्मा और श्याम सुंदर भारती हो। सभी के व्यंग्यों में जीवन के खरे अनुभव स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

डॉ. मनोहर लाल गोयल राजस्थानी के प्रवासी व्यंग्यकार है। 2014 में आई उनकी कविता संग्रह “बातां री फूलझड़ी” में समाज के सरोकार और उनसे जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों को बेबाकी से उठाते हैं।

वे लिखते हैं – “ये कवितायें आम विषय सूं सम्बन्धित होता हुयां भी खास है अर पढनीया ने दाय आपी चाये। इण कवितावां में कठे सीख है तो कठे कटाक्ष है।”<sup>3</sup>

व्यंग्यकार श्याम जांगिड कहते हैं - “आपांदेख रेया हां. के उत्तराधुनिक काल में ज्यूँ-ज्यूँ मिनख जीवण रे सांमी नुवीं नुवीं चुनोतियाँ आवती जा रेयी है, व्यंग्य रो उतनों ई पसार हू रेयो है। आज हर पत्रिका अर अखबार मांय व्यंग्य ऐक जरूरी सामग्री बणियोणि है। रोज दिन अखबरा मांय किणी खासमुद्दे माथे व्यंग्य आपरे ओजारा सू चीर-फाइ करतो रेवे। पत्रकार अर टिप्पणीकार री भासा में आज व्यंग्य रा तेवर घणा निजर आवे।”<sup>4</sup>

राजस्थानी में व्यंग्य उपन्यास, नाटक, कहानी, एकांकी और निबन्ध आदि में शैली के रूप में भी देखने को मिलता है। राजस्थानी लोकगीत, लोक कथा और कहावतों में व्यंग्य का प्रयोग देखने को मिलता है। हिंदी साहित्य की तरह राजस्थानी में 1960 में दशक के बाद नये आयाम सामने आये। समाज की विद्रूपता और विडम्बना को अपनी रचना का विषय बनाते हुए राजस्थानी व्यंग्यकारों ने इसमें योगदान दिया। जिसमें मदन केवलिया, सांवर दहिया, शंकर सिंह राजपुरोहित, बुद्धिप्रकाश पारीक, हरमन चौहान, नागराज शर्मा, प्रहलाद श्रीमाली, त्रिलोक गोयल, बुलाकी शर्मा, दीनदयाल ओझा, श्याम जांगिड, भगवती लाल व्यास, श्याम सुंदर भारती एवं मनोहर सिंह राठौड़ आदि राजस्थानी व्यंग्यकारों का लक्ष्य सामाजिक विसंगतियों भ्रष्ट राजनीति और व्यवस्था में सुधार का है, इनको रेखांकित करते हुए डॉ. उमानाथ गुप्त ने कहा है -

“राजस्थानी रा लिखारा जुग रे सांच रा चितरा मांडण सारू व्यंग्य मांय एक कानु हथियार जुग रै रूप में वापरियों है। इण मांय भासा उण रो खास आधार बणी। व्यंग्य री ताकत उण री भासा ही होया करे। इण कारण भासा सू रचनाकार सबद नै नूआं आयाम देवे अर परम्पराऊ अरथां नै नुवै रूप मांय सिरजे।”<sup>5</sup>

सन् 1945 में श्री गणेश केवलिया, श्री चन्द्रदेव शर्मा, भरत व्यास और गोपाल आचार्य आदि व्यंग्य के महारथी थे। इनके बाद कई लेखकों ने अपने साहित्य सृजन के लिए व्यंग्य को माध्यम बनाया। व्यंग्य सामयिक परिस्थितियों से पहचान कराने वाले भावों के माध्यम है।

आजादी के बाद बुद्धि वर्ग में सामाजिक अव्यवस्था अनीति, अराजकता आदि को महसूस किया गया और वो अपनी सारी पीड़ा व्यंग्य के सहारे कागजों पर उतार दी। इसके लिए राजस्थानी के समर्थ समालोचक किरण नाहटा का कहना है -

“आजादी सू पैलां राजस्थानी साहित्य मांय घने वेग सु बेवण वाली हास्य व्यंग्य री धारा लारलै पच्चीस बरसां मांय खासी राती-माती होयगी है। इण रा खास दो कारण है - पैलो तो मरुवाणी, ओलमो, कुरजां जेहड़ी सुतंत्र राजस्थानी पत्र-पत्रिकावां रो प्रकाशन अर दूजो कवि सम्मेलनां री बढ़ती लोकप्रियता इण रै अलावा आज हास्य-व्यंग्य रो छैत्र अणुतो पसराव पायग्यो है।”<sup>6</sup>

अगर व्यंग्य के भविष्य की बात करें तो आज हर पत्र-पत्रिका में और दैनिक अखबारों में व्यंग्य को प्रमुखता से जगह मिल रही है। व्यंग्य के अपने पाठक तैयार हो रहे हैं। केवल राजस्थानी में साल भर में भरमार व्यंग्य का प्रकाशित हो रहा है। लेकिन अखबारों में निकलने वाले अधिकांश व्यंग्य जनरंजन को ध्यान में रखकर लिखे जाते हैं जिसको लेकर कई खतरे भी उठाने पड़ते हैं।

क्योंकि बाजार की प्रधानता के इस दौर में हर क्षेत्र में जो बिकता है, उसी की मांग है। व्यंग्य अपनी प्रकृति में ही व्यवस्था-विरोध होता है। व्यवस्था में अन्तर्निहित हर छोटी-बड़ी विसंगति उसके प्रहार के दायरे में होती है। पर आम-नजरिए से भी आलोचित किसी घटना या प्रवृत्ति को एक नए कोण से देखना-परखना व्यंग्यकार का उद्देश्य है। बिकने वाली अभिव्यक्तियाँ आमतौर पर तात्कालिक स्थितियों की सतही विवेचना करने, उतेजना पैदा करने या महज मनोरंजन के लिहाज से रोचक बनाई गई होती है। विज्ञापनों के जुटाए गए धन के कारपोरेट तौर पर चलाने वाले कई अखबार-पत्रिकाएं व प्रकाशन संस्थान और बाजार-दर्शन के प्रचार-प्रसार के द्वारा लाभ-अर्जन करने के उद्देश्य से लिखे गए आलेखों के साथ इन रचनाओं को छापते हैं। ये पूरा तंत्र व्यंग्य के आदर्शों के विपरीत है।

क्योंकि इसमें व्यंग्यकार से अपेक्षा की जाती है कि वह हल्की-फुलकी, मजेदार, लगभग चुटकुलों के समकक्ष कुछ ऐसा लिखकर दे जो पाठक को आनंद प्रदान करे, न कि सोचने पर मजबूर करे।

आज के प्रसिद्धि की चाहत रखने वाले लेखकों के बारे श्याम सुंदर भारती अपने व्यंग्य के जरिये नसीहत देते हुए कहते हैं कि “आज रो बगत देखता लेखकां सू म्हारी विनम्र बिणती है के घनो चोखो लिखण रे अर लेखकीय ईमानदारी जीसी आउट डेटेड भावनावा रे चक्कर में नी पड़े। लिखनो-बिखनों तो जिसों-किसो है वो आपरी वैंड है। इण लारे माथो खपावण री जरूरत कोय नी।”<sup>7</sup>

राजस्थानी व्यंग्य की पड़ताल करे तो पिछले कुछ दशकों में व्यंग्य पर काफी हद तक काम हुआ है। एक स्तर का व्यंग्य लिखा जा रहा है। इसे पाठकों और साहित्यकारों द्वारा स्वीकारा भी गया है। इन सबके बावजूद भी राजस्थानी के व्यंग्य के भविष्य की तरह देखते हैं तो हमें कुछ बातों का ध्यान रखना होगा ताकि भविष्य में राजस्थानी का व्यंग्य प्रखर और धारदार होकर सामाजिक कुरीतियाँ, अंध विश्वासों और बुराइयों पर प्रहार कर सके।

व्यंग्य तात्कालिता का विषय नहीं है और न ही यह किसी भी प्रकार से शॉर्टकट है। जब तक चिंतन की गहराई से किसी विषय को नहीं देखेंगे उसकी सतह पर ही विचरण करेंगे। तो व्यंग्य धीमा पड़ सकता है। चिंतन की गहराई से पहले विषय को समझ और फिर उसे रचनात्मक रूप देने वाला रचनाकार यदि स्तम्भ लेखन भी करेगा तो उसमें चिंतन का तत्व महत्वपूर्ण होगा।

राजस्थानी व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर मंगत बादल व्यंग्य के भविष्य को इन पंक्तियों से सुरक्षित करते हुए नजर आते हैं - “अनाप सनाप धन कमवाने री एक आंधी दौड़ में संगला लोग जिण भान्त लागरया है उणा ने देखर तो ओड़ लागे के ओ काफिलो कई थमण आलो कोनी। पिसे लारे भाजता मिनख आप रो काफिलो कदे थमण आलो कोनी।”<sup>8</sup>

राजस्थान के व्यंग्य लेखक का दृष्टिकोण आलोचनात्मक के साथ साथ रचनात्मक भी रहा है चाहे वह मनोहर सिंह राठौड़ की “मुख्यां री मरोड़” “हो या फिर दुर्गेश चुरु की” उजल दागी” हो। चेतन स्वामी ने अपनी पुस्तक ‘रचाव’ में तो राजस्थान के व्यंग्य को विस्तार से समझाया है।

इन सबके बावजूद भी सही मायने में देखा जाये तो राजस्थान की व्यंग्य विधा अभी खुद से ही संघर्षरत काल से गुजर रही है जहाँ उसके सामने कई चुनौतियाँ हैं लेकिन इन सबके बावजूद इसका भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे रहा है। व्यंग्य के मामले में एक और बड़ी चुनौती ये है कि व्यंग्य को गंभीर आलोचक नहीं मिले।

शंकर सिंह राजपुरोहित अपने लेख में लिखते हैं कि “राजस्थानी में आलोचना का पक्ष कमजोर ही रहा क्योंकि अंगुलियों पर गिनने लायक ही आलोचक बचे हैं।”<sup>9</sup>

यह सत्य है कि आलोचना का अंकुश साहित्य की विधाओं को लचीलेपन से उत्कृष्टता की तरफ ले जाता है आलोचना के अभाव में विधा के भटक जाने का खतरा सदैव बना रहता है वजह चाहें जो भी रही हो लेकिन यह शत-प्रतिशत सत्य है कि व्यंग्य को अभी उस स्तर की आलोचना का धरातल नहीं मिल पाया है जिस स्तर की आलोचना का धरातल उपन्यास, निबन्ध, कहानी और कविता आदि को मिला है। इस बारे में व्यंग्यकार मनोहरसिंह राठौड़ अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं कि “आज रा राजस्थानी साहित्य ने निजर पसार ने देखा जद लखावे के कहाणी, कवितावां, निबन्ध, घणा छपे। व्यंग्य अर आलोचना रो पख की धीमी चाल चाल रहयो है। आ पोथी इण खटकाती कमी ने पूरी करणे री ऐक नान्ही सी खेचल कही जा सके।”<sup>10</sup>

अब यह अलग विमर्श है कि आलोचना के पटल तक व्यंग्य रचनाओं के ना पहुँच पाने की वजह व्यंग्य लेखक हैं या व्यंग्य रचनाओं में ही अभी वो आकर्षण नहीं आ सका है कि आलोचक का ध्यान आकर्षित कर सके अथवा आलोचक खुद ही इससे बचते हुए निकलना चाहते हैं हालांकि इस दिशा में तमाम प्रयास किये जा रहे हैं जिससे व्यंग्य को आलोचना के पटल तक ले जाकर उसे आलोचना की दो-धारी तलवार के हवाले किया जाय और व्यंग्य को और परिमार्जित स्वरूप मिल सके।

व्यंग्यकार हरमन चौहान व्यंग्य विधा के बारे में कहते हैं कि “आपां रे अठे तो वेद अर पुराण शास्त्रों अर संस्कृति माय किस्सा-गो कथावां में हास्य-व्यंग्य रो पुट घणों पुराणों है।”<sup>11</sup>

इसलिए नागराज शर्मा, देवकिशन राजपुरोहित, श्याम जांगिड़, बुलाकी शर्मा और श्याम सुंदर भारती के व्यंग्य सत्ता के प्रतिरोध में खड़े दिखाई देते हैं। वे अपने व्यंग्य के माध्यम से आम-आदमी के हक को मारने वाली हर तरह की सत्ता का विरोध करते नजर आते हैं।

देवकिशन राजपुरोहित अपनी पुस्तक ‘निवण’ में भूमिका में व्यंग्य के भविष्य के बारे में संकेत करते हुए लिखते हैं कि “घणखरा आलोचक व्यंग्य विधा ने न्यारी निकलेवी विधा पण मानण नै त्यार नी है। वे व्यंग्य नै ललित निबन्ध केय र पूरी विधा ने इ खारिज करे, पण अबे तो ललित निबन्ध कथे पड़्या है ? हॉ, जिका आलोचका व्यंग्य विधा नै नी माने आर व्यंग्यकार ने व्यंग्यकार नी माने, म्हे तो उणा ने आलोचक नहीं मानूँ।”<sup>12</sup>

अब व्यंग्य अपने आप में एक अलग विधा के रूप में पाता है चाहे वह हिंदी व्यंग्य हो या राजस्थानी के व्यंग्य हो।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्याम सुंदर भारती 'कलम अर बंदूक' पृ.सं. 1
2. मधुकर गोड 'नवान्तर व्यंग्य दशक अग, 2011 पृ.सं. 3
3. डॉ. मनोहर लाल गोयल 'बातां री फुलझड़ी' भूमिका
4. डॉ श्याम जांगिड़ 'म्हारो अध्यक्षता काण्ड' भूमिका
5. रचाव (चेतन स्वामी) उमाकांत, पृ.सं. 11
6. डॉ. किरण नाहटा 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य प्रेरणास्रोत और प्रवृत्तियां, पृ.सं. 18
7. श्याम सुंदर भारती, कलम अर बंदूक, पृ.सं. 80 हरमन चौहान, नवान्तर व्यंग्य दशक अगस्त 2017 पृ. 3
8. मंगत बादल, भेड अर ऊन रो गणित, पृ.सं. 49
9. मनोहरसिंह राजपुरोहित, राजस्थानी पत्रिका अंक अक्टूबर 2017, पृ.सं. 88
10. मनोहर सिंह राठौड़, मुंछा री मरोड़, भूमिका
11. हरमन चौहान, नवान्तर व्यंग्य दशक अगस्त 2017 पृ 3
12. देवकिशन राजपुरोहित, निवण, भूमिका

# भारत की 'साझा संस्कृति' और हिन्दी उपन्यास

आलोक तिवारी

शोद्यार्थी, इग्नू, दिल्ली



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

संस्कृति मान व मूल्यों के निरंतर परिष्कृत होने की प्रक्रिया है। हिंदी में 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा से ही लिया गया है और इसमें 'संस्कार' का भाव निहित होता है जिसे मनुष्य परम्परा से अर्जित कर उसे परिष्कृत रूप में अपने मानस में बैठा लेता है। संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों ने विभिन्न ललित कलाओं एवं अभिरुचियों को जन्म दिया जिन्होंने मानव व्यवहार, उसकी कल्पनाशीलता, आचरण की प्रवृत्तियों को न सिर्फ परिष्कृत किया बल्कि उसे एक सामाजिक प्राणी बनने की ओर अग्रसित भी किया। 'साझा संस्कृति' संस्कृति का वह स्वरूप है जिसमें भिन्न मूल्य-मान्यताओं, नैतिकताओं, जीवनशैलियों के समुदाय अपनी भिन्नता को विशिष्टता के साथ दर्शाते हुए भी एक समरसता का बोध कराते हैं। भारत में भौगोलिक लक्षणों, क्षेत्रगत, भाषागत, धर्मगत, जातिगत विविधता के परिणामस्वरूप विविध चेतना संपन्न सांस्कृतिक वर्ग आपस में टकराकर, समन्वित होकर एक बहुरंगी सांस्कृतिक कोलाज का निर्माण करते हैं जिसे हम भारत की 'साझा संस्कृति' कहते हैं। नब्बे के दशक में उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण की त्रिआयामी प्रणाली ने मध्यवर्गीय मूल्यों के प्रतिशंथ और आलोचना, साम्प्रदायिकता, उपभोक्तावादी 'संस्कृति' व हाशिये के लोगों की दास्तान समेटे हिन्दी उपन्यासों ने जहां अपने सरोकारों का विस्तार किया है, वह कथ्य और रूप की एकरसता को भी तोड़ा है।

**संकेताक्षर :** परिष्कृत, व्युत्पत्तिपरक, अस्मिताबोध, प्रकृति-प्रदत्त, अभिजनदायरा, आस्था की प्रणालियाँ, चेतना संपन्न सांस्कृतिक वर्ग, सांस्कृतिक कोलाज, गतिशील चरित्र, सांस्कृतिक परिसर, वेदधर्मी।

**सं**स्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु से बना है। 'कृ' धातु से किसी कार्य के 'करने' या 'किए जाने' का बोध होता है। 'कृ' धातु से बनने वाले प्रचलित शब्द हैं 'प्रकृति', 'संस्कृति' और 'विकृति'। 'प्रकृति' शब्द से 'मूल स्थिति' का, 'संस्कृति' शब्द से 'परिष्कृत स्थिति' का तथा 'विकृति' शब्द से 'अवनत स्थिति' का बोध होता है। इस प्रकार जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह 'संस्कृत' हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है। हिंदी में 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा से ही लिया गया है और इसमें 'संस्कार' का भाव निहित होता है। 'संस्कार' का मतलब ऐसे भाव से होता है जो मनुष्य परम्परा से अर्जित कर उसे परिष्कृत रूप में अपने मानस में बैठा लेता है। मनुष्य के व्यवहार को ये 'संस्कार' काफी हद तक निर्धारित करते हैं। किन्तु यह एक रोचक तथ्य है कि 19वीं सदी तक 'संस्कृति' शब्द का 'कल्चर' के अर्थ में प्रयोग होने का कोई संकेत नहीं प्राप्त होता है। कल्चर के लिए संस्कृति शब्द के प्रयोग का श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को जाता है। उस समय बंगाल में इस मुद्दे पर लम्बे विवाद के बाद यह तय किया गया कि 'कल्चर' के लिए समतुल्य शब्द 'संस्कृति' ही है जबकि सुनीति कुमार चटर्जी ने 'कृष्टि' शब्द सुझाया था जो 'कल्चर' के व्युत्पत्तिपरक अर्थ के ज्यादा निकट है क्योंकि 'कल्चर' 'कृषि' से सम्बद्ध है। आप अपनी त्वचा एवं पौधों से जोड़कर इसे देख सकते हैं लेकिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर सहमत नहीं हुए और उन्होंने 'संस्कृति' शब्द रचा जो न केवल अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का समतुल्य था अपितु जिसने इस शब्द को भारतीय अस्मिता से जोड़कर ज्यादा सुरुचिपूर्ण बनाकर बुलंदी पर पहुँचा दिया। आज

‘संस्कृति’ शब्द अपने मूल शब्द ‘कल्चर’ का एक बेहतर भारतीय संस्करण है।” इस तरह विचार करने पर ‘कल्चर’ और ‘संस्कृति’ अपने मूल में एक ही तरह के अर्थ को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं।

मनुष्य जैसे ही अपने प्रयासों से प्रकृति-प्रदत्त विरासत के परे जाता है, वैसे ही ‘संस्कृति’ की शुरुआत होती है। ‘संस्कृति’ की मौजूदगी यह बताती है कि हम सभी एक ऐसे जगत में रहते हैं जो मनुष्यों द्वारा ही रचा गया और जिसकी सार्थकता उन्ही की देन है। ”अपनी रोज की जिंदगी का साक्षात्कार करते हुए हमें ‘संस्कृति’ और उसके असंख्यक रूपों की जटिलताओं का एहसास होता है। इनमें से दो आयामों की शिनाख्त ‘संस्कृति’ के आधारभूत तत्वों के तौर पर की जाती है -

1. रचनाशीलता और निर्माण की मानवीय क्षमता, और
2. भाषा को बरतने की योग्यता।

उपर्युक्त दोनों तत्वों के संयोग ने परिष्कृत अभिरुचियों, ललित कलाओं और मानव-विज्ञानों का विकास किया है जिनसे ‘संस्कृति’ का अभिजन दायरा बनता है। यही संयोग उस प्रतीक-चिंतन और सामाजिक प्रतिभा को जन्म देता है, जिससे मानवीय ज्ञान, आस्था की प्रणालियों और व्यवहार की शैलियों के समेकित प्रारूप पैदा होते हैं। यह संयोग मनुष्य को उन प्रवृत्तियों, मूल्यों, लक्ष्यों और आचरणों की साझेदारी की तरफ ले जाता है जिनसे संस्थाओं, समूहों और संगठनों की रचना होती है।”

‘साझा संस्कृति’ का आशय एक विशेष किस्म की ‘संस्कृति’ से है जो मिली-जुली तो है, परन्तु घुली-मिली नहीं है, न ही विखंडित है। समग्रता में कोई भी ‘संस्कृति’ न तो पूरी तरह ‘साझा’ होती है और न ही पूरी तरह ‘गैर-साझा’। हर ‘संस्कृति’ में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो दूसरी ‘संस्कृतियों’ से मिलते-जुलते हैं, जबकि कुछ विशिष्ट तत्व ऐसे भी होते हैं जो प्रायः औरों में नहीं पाए जाते हैं। ‘संस्कृति’ को प्रायः व्यवहारों और तौर-तरीकों के एक ऐसे समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें हमारा ज्ञान, हमारी मूल्य-मान्यताएं और नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज, जीवनशैली और ऐसी सभी क्षमताएं और आदतें शामिल होती हैं जो हमें समाज का हिस्सा होने के नाते मिलती हैं। किसी खास समाज की ‘संस्कृति’ को समझने का एक तरीका यह भी है कि हम उसकी जीवनशाली (आहार, वेशभूषा, बोली,

रीति-रिवाज आदि), सांस्कृतिक उपादानों (कला एवं शिल्प, संगीत, नृत्य, सौंदर्यशास्त्र आदि) और नैतिकता (नीतिशास्त्रीय अवधारणाएँ, आदर्श, अच्छे और बुरे की समझ, अपेक्षित और अनपेक्षित आदि।) उपर्युक्त तीनों अवधारणाएँ उस जटिल समुच्चय के मुख्य अवयव हैं, जिसे ‘संस्कृति’ कहा जाता है। ध्यातव्य है कि इन तीनों अवयवों का सम्बन्ध समाज विशेष से है, इस प्रकार ‘संस्कृति’ किसी की व्यक्तिगत नहीं, बल्कि एक पूरे समूह या समाज की परिघटना होती है। जब हम ‘साझा-संस्कृति’ की बात करते हैं तो हमारा आशय इस बात से होता है कि ‘संस्कृति’ के उपर्युक्त सभी पहलुओं में एक साझापन मौजूद था और वह अभी भी कायम है।

भारत एक बहुलतावादी देश है। यहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ मौजूद हैं। भौगोलिक लक्षणों की विविधता से लेकर क्षेत्रगत विविधता, भाषागत विविधता, धर्मगत विविधता, जातिगत विविधता इत्यादि। इस विविधता के परिणामस्वरूप इस देश में मनुष्यों के भी विविध चेतना संपन्न सांस्कृतिक वर्ग पाए जाते हैं। प्रायः ये सभी वर्ग एक दूसरे से टकराते हैं, समन्वित होते हैं और फिर भी अपने अस्तित्व को बनाए रखते हैं। इसी टकराहट और समन्वयन की परस्पर द्वंदात्मक प्रक्रिया के मध्य ये विविध चेतना संपन्न सांस्कृतिक वर्ग एक बहुरंगी सांस्कृतिक कोलाज का निर्माण करते हैं जिसे हम भारत की सामासिक ‘संस्कृति’ या ‘साझा संस्कृति’ कह सकते हैं। भारत के सन्दर्भ में ‘साझा संस्कृति’ शब्द बहुधा हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के समन्वय का परिचायक मान लिया जाता है। प्रायः इसे गंगा-जमुनी ‘संस्कृति’ भी कहा जाता है। यह न केवल एक भ्रांत धारणा है बल्कि यह प्रायः ‘साझा संस्कृति’ का विलोम भी उत्पन्न करती है। भारत के बहुरंगी सांस्कृतिक कोलाज में भले ही हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का एक बड़ा हिस्सा हो किन्तु इसके बावजूद हम अन्य धार्मिक सम्प्रदायों जैसे- सिक्ख, बौद्ध, ईसाई, जैन, पारसी इत्यादि को नजरंदाज नहीं कर सकते। साथ ही साथ लगभग प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय में मौजूद हाशिये पर स्थित वर्ग, जैसे- दलित, आदिवासी इत्यादि का भी भारत की साझा-‘संस्कृति’ में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः ‘साझा संस्कृति’ एक वृहत्तर अवधारणा है।

वस्तुतः धर्म और ‘संस्कृति’ दो भिन्न अवधारणायें हैं। धर्म ‘संस्कृति’ का एक तत्व मात्र है। ‘संस्कृति’ एक क्षेत्र विशेष में रहने वाले सम्बंधित समूह की भाषा,

जीवनशैली, लोक-व्यवहार, वस्त्र, धर्म, परम्परा इत्यादि में अभिव्यक्त होती है। जाहिर है इस दृष्टि से 'संस्कृति' निरंतर गतिशील चरित्र (डायनमिक कैरेक्टर) की होती है। 'संस्कृति' का सम्बन्ध अन्य तत्वों की अपेक्षा क्षेत्र विशेष और उसके वातावरण (भौगोलिक और राजनीतिक) से अधिक सघन होता है। साथ ही अन्य तत्वों की अपेक्षा 'भाषा' में 'संस्कृति' की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट रूप में होती है। मसलन एक आन्ध्र-प्रदेश के हिन्दू और इस्लाम धर्म से सम्बंधित व्यक्तियों में सामान धर्मावलम्बी बिहार या पंजाब के व्यक्तियों की अपेक्षा सांस्कृतिक स्तर पर अधिक समानता देखी जा सकती है। सवाल उठता है कि धर्म (रूढ़ अर्थ में 'उपासना-पद्धति') जब विस्तृत सांस्कृतिक परिसर का एक छोटा सा हिस्सा मात्र हैं, तो ऐसा क्यों होता है कि मनुष्य की अन्य सांस्कृतिक पहचानों के बरक्स धर्म सबसे बड़ी पहचान के रूप में स्थापित हो जाता है या कर दिया जाता है। भारत की 'साझा-संस्कृति' को समझना इस प्रश्न से टकराए बिना संभव नहीं है।

“भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सर्वाधिक सजग नेतृत्व कर्ता महात्मा गाँधी धर्म की पवित्रता और उपयोगिता पर दृढ़ आस्था रखते हुए भी उसके मानव-विरोधी प्रयोग के प्रति निरंतर सचेष्ट थे। हिन्द-स्वराज में वे लिखते हैं कि. “धर्म तो एक ही जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। हम दोनों हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग रास्ते लें, इससे क्या हो गया, इसमें लड़ाई काहे की ? और ऐसी कहावतें तो शैवों और वैष्णवों में भी चलती हैं। पर इससे कोई यह नहीं कहेगा कि वे एक राष्ट्र नहीं हैं। वेद धर्मियों और जैनों के बीच बहुत फर्क माना जाता है, फिर भी इससे वे अलग राष्ट्र नहीं बन जाते। हम गुलाम हो गए हैं, इसलिए अपने झगड़े हम तीसरे के पास ले जाते हैं।”<sup>3</sup> हिन्द-स्वराज में गाँधी जी ने भारत राष्ट्र की उस स्वदेशी सामासिक परम्परा को उपनिवेशवादियों के गलत प्रचार के घटाटोप से बाहर निकलकर पेश किया जिसके अनुसार यहाँ पर सदियों के काल प्रवाह में वैदिक, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव के साथ-साथ पारसी, ईसाई, मुसलमान इस राष्ट्र के विराट व्यक्तित्व के अंग बन चुके थे। वास्तव में महात्मा गाँधी का चरम लक्ष्य महज राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं था बल्कि भारतीय समाज को रुग्ण बनाने वाली उस मानसिकता से मुक्तिथी जो भारतीय समाज और 'संस्कृति' के लिए विभाजनकारी और हीन भाव उत्पन्न करने वाली थी।

जिसका स्पष्ट उल्लेख उनके भाषणों, यंग इंडिया के लेखों, तथा हिन्द-स्वराज में मिलता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता तो मात्र एक पड़ाव था, लक्ष्य तो एक ऐसी साझी भारतीय 'संस्कृति' की स्थापना थी जिसमें तमाम विभेदनकारी तत्वों का शमन हो सके तथा शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठा मिले। गाँधी द्वारा प्रस्तावित इस साझी भारतीय 'संस्कृति' के बाह्य स्वरूप (जिसे कुछ लोग हिन्दू मानसिकता की उपज मानते हैं) से मतभेद हो सकता है किन्तु भारतीय राष्ट्र के स्थायित्व के लिए इसमें अन्तर्निहित मूल्यों की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत एक लोकतांत्रिक देश के रूप में स्थापित हुआ। भारत के संविधान ने यहाँ के प्रत्येक नागरिक की स्वतन्त्रता और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को सुनिश्चित किया है। इस प्रकार भारतीय संविधान भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में मान्यता देता है जहाँ की 'संस्कृति' एक बहुलतावादी सामासिक 'संस्कृति' है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि 'साझा-संस्कृति' को मान्यता देने के पीछे इस विश्वास का भी महत्वपूर्ण योगदान है कि प्रत्येक 'संस्कृति' में मूल्यवान तत्त्व हैं, जिन्हें दूसरी 'संस्कृति' के लोगों को जानना चाहिए। भारतीय समाज विविधताओं से भरा हुआ है। प्रत्येक समुदाय सह अस्तित्व में रहते हुए एक-दूसरे के मूल्यों और परम्पराओं से कुछ न कुछ लेकर समृद्ध होता रहता है। सहिष्णुता यहाँ थोपी गयी या निष्क्रिय सिद्धांत न होकर एक सक्रिय किस्म की जीवंत सहनशीलता के पक्ष में है। भारत की साझा-संस्कृति विभिन्न समुदायों के भीतर विभिन्न आस्थाओं, जातीयताओं और विविध 'संस्कृतियों' की मौजूदगी को सकारात्मक मानकर उन्हें व्यक्ति के सशक्तिकरण का स्रोत मानती है।

भारतीय संविधान के संकल्प और सदृच्छाओं के बावजूद भारत की 'साझा-संस्कृति' के ताने बाने पर अनेक प्रहार हुए, हालांकि इसके बावजूद यहाँ के नागरिकों की अपने संविधान और सांस्कृतिक साझेपन से आस्था डिगी नहीं। 1990 का दशक स्पष्ट रूप से भारतीय इतिहास में एक बदलाव के साथ उपस्थित होता है। यद्यपि इसकी भूमिका 1970 से ही बननी प्रारम्भ हो गयी थी। 1990 के दशक से पूर्व जहाँ राजनीतिक दल साम्प्रदायिक या जातिगत विभेद को अपने पक्ष में इस्तेमाल और बढ़ावा देते थे वहीं इस दशक में हम बड़े ही मुखर रूप से ऐसे

दलों के राजनीतिक उत्कर्ष के साक्षी बने। इस दौर में रथ-यात्रा के साथ नए सिरे से हिंदुत्व के सिंडीकेशन के साथ ही उदारीकरण, निजीकरण और सोवियत संघ के बजाय नए मित्र अमेरिकी पूंजीवाद की ओर रुझान ने भारतीय साझा-‘संस्कृति’ के स्वरूप में उथल-पुथल मचा दी। उदारीकरण ने आर्थिक गलियारे से होते हुए भारतीय समाज और ‘संस्कृति’ के क्षेत्र में प्रवेश किया। भारत में उपभोक्तावादी ‘संस्कृति’ को बढ़ावा मिला। उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण एक त्रिआयामी प्रणाली के रूप में स्थापित हुआ। इसने न केवल भारतीय अर्थतंत्र पर बल्कि राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तंत्र पर भी व्यापक प्रभाव डाला। विशेष रूप से इसके फलस्वरूप दलित, आदिवासी तथा स्त्रियों में अस्मिताबोध की चेतना ने एक नया आयाम हासिल किया।

इन सबका समन्वित प्रभाव भारत की ‘संस्कृति’ पर पड़ा जिससे साझेपन का स्वरूप और गहन एवं जटिल हुआ।

इस दौर में जीवन दृष्टि, मूल्यबोध, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में जो अभूतपूर्व परिवर्तन घटित हो रहे थे उनका प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर भी पड़ा। इन उपन्यासों में न केवल नए यथार्थ की चुनौतियों और संकटों को ही पहचाना है भविष्य के संभावनाओं की चिंता भी उसमें दिखायी पड़ती है। इस दौर में मध्यवर्गीय मूल्यों के प्रति संशय और आलोचना, साम्प्रदायिकता, उपभोक्तावादी ‘संस्कृति’ व हाशिये के लोगों की दास्तान समेटे हिन्दी उपन्यासों ने जहां अपने सरोकारों का विस्तार किया है, वहीं कथ्य और रूप की एकरसता को भी तोड़ा है। कहा जा सकता है कि इस दौर में उपन्यास महज साहित्यिक संरचना की तुलना में एक सामाजिक संरचना के रूप में भी अधिक पुष्ट और समृद्ध हुआ है।

‘साझा-संस्कृति’ की दृष्टि से इस दौर के उल्लेखनीय उपन्यास हैं – निन्यानवे (रविन्द्र वर्मा), डूब (वीरेन्द्र जैन), दावानल (नवीन जोशी), ग्लोबल गाँव के देवता (रणेन्द्र),

आदिग्राम उपाख्यान (कुपाल सिंह), हलफनामे (राजू शर्मा), विसर्जन (राजू शर्मा), रेहन पर रघू (काशी नाथ सिंह), ए बी सी डी (रविन्द्र कालिया), 17 रानडे रोड (रविन्द्र कालिया), रह गयी दिशाएँ इसी पार (संजीव), कलिकथा वाया बायपास (अलका सरावगी), सूत्रधार (संजीव), जंगल जहां शुरू होता है (संजीव), तर्पण (शिवमूर्ति), कालकथा (कामतानाथ), कठगुलाब (मृदुला गर्ग), चाक (मैत्रयी पुष्पा), अल्मा कबूतरी (मैत्रयी पुष्पा), रेत (भगवानदास मोरवाल), दिलोदानिश (कृष्णा सोबती), दुखम-सुखम (ममता कालिया), ऐलान गली जिंदा है, यहाँ वितस्ता बहती है, अपने-अपने कोणार्क (चन्द्रकान्ता), छिन्नमस्ता, पीली आँधी (प्रभा खेतान), मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), आँवा (चित्रा मुद्गल), सलाम आखिरी (मधु कांकरिया), शुद्धि पत्र (नीलाक्षी सिंह), आखिरी कलाम (दूधनाथ सिंह), कैसी आगी लगायी (असगर वजाहत), बरखा रचाई (असगर वजाहत), बीच में विनय (स्वयं प्रकाश), ईधन (स्वयं प्रकाश), वे वहाँ कैद हैं (प्रियंवद), शहर में कर्फ्यू (विभूतिनारायण राय), कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर), जिंदा मुहावरे (नासिरा शर्मा), हमारा शहर उस बरस, खाली जगह (गीतांजलि श्री), काला पहाड़ (भगवानदास मोरवाल), उन्माद (भगवान सिंह), घर का आखिरी कमरा (प्रियदर्शन मालवीय)।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक भारतीय संस्कृति’ विषय पर साहित्य रंगभूमि प्रतिष्ठान, पुणे में 22 फरवरी 2015 को गिरीश कर्नाड द्वारा दिया गए व्याख्यान का हिंदी में रूपांतरित और अनूदित अंश।
2. संस्कृति, सामाज-विज्ञान विश्वकोश, खंड-1, संपा. अभयकुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. महात्मा गाँधी, हिन्द स्वराज, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, संस्कारण 2010।

## मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना में माणिक्यलाल वर्मा का योगदान

रोशन गहलोट

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

### शोध सारांश

राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानी एवं जन आंदोलन के प्रणेता माणिक्यलाल वर्मा का मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना में उल्लेखनीय योगदान रहा है। वे राजस्थान की जन जागृति के अग्रदूत थे। उन्होंने राजस्थान में क्रांति की अग्नि को प्रज्वलित किया था। वह अग्नि धीमे-धीमे प्रखर होती गई और अंत में अन्याय और अत्याचार पर टिकी सामंती व्यवस्था को भस्म करके ही शांत हुई। वर्मा जी ने बहुत संघर्ष करते हुए बिजौलियां किसान आंदोलन तथा मेवाड़ प्रजामंडल के द्वारा किसानों को जागीदारी प्रथा व शासकों के अत्याचारों से मुक्ति दिलायी तथा उन्हें अपने हक की लड़ाई लड़ने की ओर अग्रसर किया था।

संकेताक्षर : बिजौलियां, राष्ट्रीयता, अधिवेशन, जागृति, आंदोलन, जन जागरण, प्रजामंडल।

**श्री** माणिक्यलाल वर्मा राजस्थान जन जागृति के अग्रदूत रहे थे। वे कवि एवं गीतकार और कर्मठ नेता भी थे। देश को स्वतंत्रता मिलने से पूर्व राजस्थान में रजवाड़ों के खिलाफ जो लड़ाई प्रजामंडलों ने लड़ी, 1948 में उसी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए यहाँ प्रदेश कांग्रेस का गठन किया गया। स्वतंत्रता के पूर्व प्रजामंडलों ने अपने क्रांतिकारी तौर-तरीकों से जनता को सामंतशाही के खिलाफ जंग लड़ने के लिए तैयार किया था। चूंकि स्वतंत्रता के पश्चात् भी सामंती तत्वों के खिलाफ जंग को जारी रखना था, इसलिए सभी राज्यों में प्रदेश कांग्रेस कमेटियों का गठन किया गया। प्रजामंडलों के जरिये ही अंग्रेजों के खिलाफ जन-मानस को जागृत किया जा सकता था। श्री माणिक्यलाल वर्मा ने रियासतों में सामंती ताकतों से टक्कर लेकर उन्हें पहली बार जनशक्ति का बोध कराया था। वर्मा जी ने सबसे पहले राजस्थान की दबी हुई रियासती जनता से न्याय के लिए राजा, जागीरदार और शासन के अत्याचारों के विरुद्ध साहस और निर्भीकता से लोहा लिया था।

अखिल भारतीय कांग्रेस के हरिपुरा सम्मेलन में ही यह तय किया गया कि राजशाही के विभिन्न राज्यों में कांग्रेस कार्यकर्ताओं का एक पृथक संगठन तैयार किया जाये। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्व. डॉ. पट्टाभि सीतारमैया की अध्यक्षता में 'ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांग्रेस गठित की गयी। इसके पश्चात् ही विभिन्न रजवाड़ों में प्रजामंडल बनाये गये। हालांकि रजवाड़ों ने प्रजामंडलों को पसंद नहीं किया फिर भी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के प्रति अलग-अलग राजाओं का अपना पृथक-पृथक नजरिया था।

माणिक्यलाल वर्मा जी का जन्म बिजौलियाँ में अपने पैतृक गृह में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी शनिवार को रेवती नक्षत्र, प्रथम चरण, संवत् 1654 तदनुसार 4 दिसम्बर 1897 ई. को हुआ। बालक माणिक्यलाल वर्मा को अपने पिता श्री छगनलाल माथुर का अभिभावकत्व प्राप्त नहीं हुआ। उनके जन्म के सवा साल के बाद ही उनके पिताजी छगनलाल माथुर का स्वर्गवास हो गया। उनके पितामह बिजौलियाँ राव के यहाँ कर्मचारी थे। उनके परिवार का समस्त वातावरण अपने स्वामी की भक्ति व निष्ठा से सेवा करने की भावना से ओत-प्रोत था।

1913 से 1930 ई. तक चले बिजौलियाँ किसान आंदोलन ने जनता में विद्रोह के स्वर को ऊपर उठाने का साहस किया तथा देश के गौरवमय इतिहास में नवीन विश्वास पैदा किया। इसी से प्रभावित होकर मेवाड़ के वीर सपूत इस स्वतन्त्रता आंदोलन में सम्मिलित हुए तथा राष्ट्रीय नेता गाँधी के सत्याग्रह में सहयोग दिया। इस किसान आंदोलन का नेतृत्व विजयसिंह पथिक ने किया जिसमें माणिक्यलाल वर्मा, रामनारायण चौधरी, सीताराम साधु आदि कर्मठ सहयोगियों ने दलित व दरिद्र वर्ग से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया। इस प्रकार प्रेरित कर पथिक ने मेवाड़ में स्वयं सेवकों की कतार लगा दी। 1922 ई. के अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में मेवाड़ के 29 प्रतिनिधियों से गाँधी जी ने कहा कि तुम जो मेवाड़ राज्य में कर चुके हो, वह आदर्श है। इस प्रकार बिजौलियाँ आंदोलन का प्रभाव बँगू, पारसोली आदि जागीरों में पड़ा, जिससे वहाँ के किसानों में जागृति आई।<sup>1</sup>

बिजौलियाँ आंदोलन की सफलता तथा गाँधी जी के प्रभाव से नवयुवकों का एक ऐसा दल तैयार हुआ, जिसने अपने-अपने जिले में राष्ट्रीयता की भावना प्रसारित की। इसमें उदयपुर के चिमनलाल बोदिया, कांकरोली के श्रीनारायण, सलूमबर के घनश्याम, नाथद्वारा के रघुनाथ पालीवाल, चित्तौड़ के घनश्याम जोशी आदि थे। बलवन्तसिंह मेहता प्रताप जयंती के संचालक थे, उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया। भंवरलाल वर्मा नारेली आश्रम में प्रशिक्षण लेने गए। श्रीमती नारायणी देवी, श्रीमती भगवती देवी आदि महिलाओं ने भी सहयोग दिया।<sup>2</sup> मेवाड़ के बहुत से कार्यकर्ता राष्ट्रीय गतिविधियों से जुड़े हुए थे परन्तु मेवाड़ में राजनीतिक संगठन का अभाव था। किसान आंदोलन के नेता माणिक्यलाल वर्मा आंदोलन की सफलता के बाद इंगूरपुर में रचनात्मक कार्यों से जुड़ गये। परन्तु इससे उन्हें संतोष नहीं मिला। वे राजनीतिक चेतना व जन जागरण का कार्य करना चाहते थे। इसके लिए वे अजमेर चले गये। जहाँ ब्रिटिश प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो गयी थी। उदयपुर आकर जनता को संगठित करने का प्रयास किया तथा राजनीतिक संस्था की स्थापना का निर्णय लिया।<sup>4</sup>

माणिक्यलाल वर्मा, बलवन्तसिंह मेहता, हीरालाल कोळारी, भूरालाल बयां, भवानीशंकर वैद्य, दयाशंकर क्षेत्रीय आदि से परामर्श कर प्रजामण्डल का विधान तैयार किया तथा 24 अप्रैल 1938 ई. को बलवन्तसिंह मेहता

के साहित्य कुटीर में प्रजामण्डल की स्थापना कर रघुनाथ के मकान में इसका कार्यालय खोला गया, जहाँ से सदस्यता फार्म व विधान को छपवाकर वितरित किया जाता था। कुछ दिनों में ही इसके दो हजार व्यक्ति सदस्य बन गये। परन्तु 11 मई 1938 ई. में राज्य की विशेष आज्ञा से मेवाड़ प्रजामण्डल को गैर कानूनी घोषित कर माणिक्यलाल वर्मा व रमेशचन्द्र व्यास को मेवाड़ छोड़कर जाने का आदेश जारी कर दिया। वर्मा ने प्रजामण्डल के समस्त कागजात शंकर सहाय सक्सेना के द्वारा अजमेर भिजवा दिये। वर्मा ने अजमेर से विजयदशमी के दिन मेवाड़ में सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया।<sup>5</sup>

मेवाड़ में सरकार की गतिविधियों से तीव्र क्षोभ था, परन्तु राजनैतिक कार्यकर्ताओं में तीव्र उत्साह था। अम्बालाल जोशी ने राज्य की नीति का विरोध करने के लिए एक सभा का आयोजन किया, जिसमें 3000 की संख्या में जनता उपस्थित थी, जिसने प्रजामण्डल की नीति का समर्थन किया। 28 नवम्बर 1938 ई. को अनेक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया, जिनमें भूरालाल बयां, रूपलालजी सोमानी, गोकुललाल जी धाकड़, कन्हैयालाल जी धाकड़, श्रीमती नारायणी देवी, श्रीमती रमादेवी, श्रीमती भगवती देवी विश्णोई आदि को सराड़ा सेन्ट्रल जेल उदयपुर, कुंभलगढ़, गिराई आदि जेलों में यातनाएँ दी गयी थी। कुछ लोगों को मेवाड़ से निष्कासित कर दिया।<sup>6</sup>

वर्मा ने आंदोलन में तेजी लाने के लिए जमनालाल बजाज व अन्य व्यापारियों से चन्दा इकट्ठा किया। माणिक्यलाल वर्मा की गतिविधियों के कारण उन्हें 2 फरवरी 1939 ई. को सरहद ऊँचा इलाका मेवाड़ में गिरफ्तार किया गया, गिरफ्तारी के समय पुलिस से छुटने की कोशिश की तथा पुलिस पर लठ भी चलाये, परन्तु इसी बीच वर्मा को कुछ चोटें आईं, जिसके लिए उन्हें जहाजपुर अस्पताल में डॉ. मोदी से जाँच कराई जहाँ उन्हें ठीक बताया गया।<sup>7</sup>

निषेध आज्ञा उल्लंघन में जहाजपुर न्यायालय में उन्हें दो साल की सजा दी गयी। उन्हें सेन्ट्रल जेल व कुंभलगढ़ जेल में बन्दी बनाकर रखा गया। जेल में उन्हें सिरदर्द व कब्ज की शिकायत थी, जिससे उन्हें उदयपुर अस्पताल में दिखाया गया। परन्तु उनके इलाज की उचित व्यवस्था नहीं थी, जिसकी गाँधी जी ने भी निंदा की तथा मेवाड़ के सहायक मंत्री (प्रजामण्डल) नंदलाल जोशी ने भी सरकार को चेतावनी देते हुए वर्मा के शीघ्र इलाज की व्यवस्था की माँग की थी।<sup>8</sup>

मेवाड़ सरकार ने 8 जनवरी 1940 ई. को वर्मा को रिहा कर दिया। इस समय मेवाड़ में सत्याग्रह चालू था। प्रजामण्डल के कार्यकर्ता अकाल सहायता गाँव-गाँव पहुँचा रहे थे। जिससे प्रजामण्डल के प्रति लोगों में श्रद्धा बढ़ने लगी। 3 मार्च 1939 को सत्याग्रह गाँधी जी के आदेश से बंद कर दिया। 22 फरवरी 1941 ई. को मेवाड़ के दीवान विजय राघवाचार्य के सुझाव से महाराणा ने प्रजामण्डल से रोक हटाकर राजनैतिक कार्य की छूट दे दी थी।<sup>9</sup>

प्रजामण्डल आंदोलन के समय माणिक्यलाल वर्मा ने मेवाड़ सरकार पर एक पुस्तिका लिखी जिसमें मेवाड़ शासन की गतिविधियों का विश्लेषण था। इस बारे में महकमा खास के इंस्पेक्टर जनरल ने महाराज लक्ष्मणसिंह को रिपोर्ट कर बताया कि रियासत में मेवाड़ प्रजामण्डल स्थापना की योजना माणिक्यलाल वर्मा द्वारा की जा रही है, इसके लिए उसने 'मेवाड़ राज्य का शासन' नाम की किताब आदर्श प्रिंटिंग प्रेस से छपवाई, जिसकी कीमत एक आना यत्दार रखी गयी। जिसमें सरकार की आलोचना की गई है, तथा जनता से अपील की गई है कि प्रजामण्डल की स्थापना में तन-मन-धन से सहयोग करें। अतः सरकार से अपील है कि इस पुस्तक पर पाबंदी लगायी जाये तथा इसके पार्सल की जाँच की जाए तथा यह हिदायत जारी की जाए कि यदि किसी के पास यह किताब पाई जाए तो जब्त करें और उस व्यक्ति को नजदीकी थाने में हाजिर होने का आदेश जारी करें।<sup>10</sup>

प्रजामण्डल ने अपने सीमित साधनों से जन आंदोलन चलाया और निरंकुश शासकों से लोहा लिया। जन आंदोलन के दौरान देशी नरेशों ने प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं पर बहुत अत्याचार किये, किन्तु वे डटे रहे और नरेशों को उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए विवश होना पड़ा। उनके समर्थन से राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला। अनेक राजाओं ने प्रजामण्डल के जन आंदोलनों से भयभीत होकर भारत संघ में मिलना स्वीकार किया। प्रजामण्डल ने देश को राजनैतिक एकता के सूत्र में बांध दिया तथा राजस्थान में राजनीतिक चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।<sup>11</sup>

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मेवाड़ प्रजामंडल का आधार प्रमुखतः आधुनिक शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग के द्वारा ही किया गया था। प्रारंभ से ही अब तक प्रजामंडल का नेतृत्व भी इसी वर्ग के हाथों में रहा। फिर दूसरा वर्ग मेवाड़ का सामाजिक आधार बना,

व्यापारी वर्ग था। जब सामंती व्यवस्था इस वर्ग के विकास को अवरुद्ध कर रही थी तो इसे परिवर्तित करना उनके लिए बहुत जरूरी हो गया था। इस युग में भारत में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का विकास हो चुका था, जो अखिल भारतीय कांग्रेस का समर्थक था। राष्ट्रीय पूंजीपति, विदेशी व्यापारियों द्वारा देश से धनार्जन को सहन नहीं कर सकता था, अतः राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को इस वर्ग का पूरा सहयोग एवं समर्थन प्राप्त हुआ। तीसरी तरफ किसान जो सदियों से सामंती शोषण का शिकार हो रहा था। मेवाड़ प्रजामंडल ने अपने कार्यक्रम में इनकी समस्या को पर्याप्त स्थान प्रदान किया था जो आंदोलन किसान को दासता से मुक्ति दिलाने का वादा कर रहा था, उसको किसानों द्वारा समर्थन प्राप्त होने लगा। उस वक्त माणिक्यलाल वर्मा जैसे स्वतंत्रता सेनानी ने मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना में विजयसिंह पथिक के साथ मिलकर बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया और सामंती प्रथा के खिलाफ आवाज उठायी। मेवाड़ प्रजामंडल का वैचारिक आधार बड़े रूप में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा से ही प्रेरित रहा था।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बिजौलियाँ किसान आंदोलन : शंकर सहाय सक्सेना, डॉ. पद्मजा शर्मा, पृ. 66
2. पाक्षिक रिपोर्ट फा. नं. 421, पी. फो. पो., राज अभि. बीकानेर।
3. इंडिया स्टेट पीपुल्स कांग्रेस, मुम्बई, 18 नवम्बर 1935
4. कॉन्फीडेंशियल फा. नं. 22, 1938
5. कॉन्फीडेंशियल फा. नं. 20, धानमंडी थाना रिपोर्ट, 1938 राज अभि. बीकानेर।
6. फो. पो. प्रजामंडल गिरफ्तारी नं. 13/24-28 अक्टूबर 1938, राज अभि. बीकानेर।
7. उदयपुर प्रजामंडल फा. नं. 5, बस्ता नं. 1, फरवरी 1939 पृ 14 राज अभि. बीकानेर।
8. वही, फा., पृ. 18-19
9. सत्यनारायण सराफा का जमनालाल बजाज को पत्र-16 दिसम्बर, 1938, नई दिल्ली।
10. उदयपुर प्रजामंडल फा. नं. 111, बस्ता नं. 12, 1939 पृ 24-25, राज अभि. बीकानेर।
11. राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम : डॉ. एस.एल. नागौरी-कांता नागौरी, पृ. 76

## बाल श्रम : समस्या व समाधान

डॉ. मनीष जोशी

सह-आचार्य, श्री बी.आर. मिर्धा राजकीय महाविद्यालय, नागौर



www.shodhshree.com

### शोध सारांश

आज समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है कि जिन हाथों में कक्षाओं की किताबें व भविष्य के सपने होने चाहिए, उन हाथों में जीविकोपार्जन के औजार होते हैं ये दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियां नहीं हैं तो क्या है? भारत में 5 से 14 साल के बीच के 10.13 मिलियन बच्चे बाल मजदूर हैं। गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा, महंगाई, बढ़ती जनसंख्या, भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण इत्यादि बाल श्रम के कारण हैं। ये बाल मजदूर जो बीमार हैं, वे जब जवान होते हैं तो बीमारी, गरीबी व भूखमरी से इनके कंधे इतने झुक जाते हैं कि देश या समाज का बोझ उठाना तो दूर अपने परिवार का बोझ भी नहीं उठा पाते। बच्चों को संरक्षित करने, उन्हें राष्ट्रीय निधि के रूप में पल्लवित करने, बाल अधिकारों की रक्षा करने तथा उन्हें विकास के अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बाल श्रम उन्मूलन हेतु अनेक कानूनी प्रावधान किए गये फिर भी वास्तविक रूप से हम उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं हो पाए।

**संकेताक्षर :** बालश्रम, जीविकोपार्जन, समस्या, राष्ट्रीय निधि, समाधान।

**ब**च्चों को हमेशा भगवान के बाद सबसे पवित्र रूप माना जाता है जो हमेशा खुशी, मस्ती, मासुमियत और आशा जगाने का प्रयास करने वाले समझे जाते हैं। एक देश के भविष्य का निर्धारण इस आधार पर होता है कि किस तरह से उस देश में बच्चों व महिलाओं के साथ व्यवहार होता है। बच्चे आशा की किरण होते हैं। यदि देश को सामाजिक व आर्थिक रूप से पुष्ट बनाना है तो भविष्य सृजित करने वाले इन नागरिकों को सुयोग्य एवं सर्वगुण सम्पन्न बनाने के लिए उपयुक्त दशाएँ निर्मित करना एक राष्ट्र के उत्तरोत्तर विकास की अपरिहार्य शर्त है।

“कोहरों से ढकी बच्चे काम पर जा रहे हैं,

सुबह-सुबह

बच्चे काम पर जा रहे हैं।”

कवि राजेश जोशी ने अपनी कविता में बालश्रम का बिल्कुल सही चित्रण किया है। बालश्रम एक सामाजिक अभिशाप है। जिन हाथों में कक्षाओं की किताबें व भविष्य के सपने होने चाहिए उन हाथों में जीविकोपार्जन के औजार होते हैं। ये दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियाँ नहीं तो और क्या है? बाल शोषण, उत्पीड़न तथा बाल अधिकारों का हनन एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। जिसके बालश्रम, बाल वेश्यावृत्ति तथा बाल भिक्षावृत्ति आदि चर्चित आयाम हैं। भारत में 5-14 साल के बीच 10.13 मिलियन बाल मजदूर हैं। स्कूल जाने वाली उम्र के 4 बच्चों में से एक बच्चा हमारे देश में विद्यालय से बाहर है। तमाम विकासशील योजनाओं के बावजूद आज भारत में 2.3 करोड़ बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। संयुक्तराष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि पूरी दुनिया में जिसमें अधिकांश अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान जैसे विकसित राष्ट्र भी शामिल हैं, इस समय 6.14 वर्ष की आयु के 25 करोड़ बच्चे बाल श्रमिकों की सूची में शामिल हैं।

## भारत में बाल श्रम की स्थिति

भारत के बाल मजदूरों की कुल जनसंख्या में से 21 लाख से ज्यादा बाल मजदूर की संख्या उत्तर प्रदेश में है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर के कालीन उद्योग में 1 लाख से अधिक बाल मजदूर काम करते हैं। उत्तर प्रदेश का फिरोजाबाद अपनी चूड़ियों के लिए दुनियाभर में प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि बाल श्रमिकों के बिना फिरोजाबाद का चूड़ी उद्योग नहीं चल सकता। इस उद्योग में 800° सेल्सियस तक के तापमान वाली भट्टियों में काम करके मासूम बच्चों की त्वचा झुलस जाती है।

तमिलनाडू के कुछ जिलों में पटाखों और माचिस की इकाईयों में 45,000 बच्चे, फिरोजाबाद के ग्लास के कारखानों में 46,000 बच्चे, मिजोरम की पत्थर की खदानों में 7,000 से अधिक बच्चे, वाराणसी में 5,000 बच्चे रेशम बुनने में, दिल्ली में 60,000 से अधिक बच्चे 2 या 3 रुपये की प्रतिदिन की मजदूरी पर ढाबों व चाय की स्टालों पर काम करते हैं। मुरादाबाद का पीतल उद्योग, अलीगढ़ का ताला उद्योग, जयपुर के जवाहारात पॉलिश उद्योग, निजामाबाद का बीड़ी उद्योग सूत का हीरा उद्योग, आगरा के चमड़े का उद्योग इत्यादि में कई बड़ी संख्या में बच्चे खतरनाक कामों को विषम परिस्थितियों में कर रहे हैं।

इनके अतिरिक्त होटल, रेस्टोरेन्ट, साइकिल, मोटरसाइकिल मरम्मत, मछली पालन व जूता पॉलिश, किराणे की दुकानों तथा अन्य घरेलू कार्यों में बड़ी संख्या में बाल मजदूर अत्यन्त दयनीय स्थितियों में कार्यरत हैं।

### बालश्रम के कारण व परिणाम

बाल श्रमिकों को श्रम महत्त्व तथा श्रम कानूनों की कोई जानकारी न होने के कारण वे सदैव अपने मालिक के कठोर नियंत्रण में रहते हैं। इनके साथ किसी प्रकार के हड़ताल, यूनियनबाजी का खतरा नहीं होता। कम कीमत पर ज्यादा काम लेने के कारण नियोजक बाल मजदूरों को ही प्राथमिकता देते हैं।

बच्चे गन्दे व असुविधाजनक वातावरण में चुपचाप घंटों काम कर लेते हैं। सभी जगह उनकी हालत एक जैसी है। कई बच्चे जिन्हें उठाकर ले जाया जाता है, फिर उन्हें बाल श्रमिक या भिखारी बना दिया जाता है। उन्हें तो दो वक्त खाने की रोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया जाता। खाने के लिए भी उतना ही दिया जाता है ताकि वे जीवित रह सकें और उनका काम होता रहें।

बाल श्रमिकों की वेदना व दर्द का मार्मिक चित्रण नोबेल शांति पुरस्कार विजेता श्री कैलाश सत्यार्थी द्वारा अपनी आत्मकथा में किया गया जिसमें उन्होंने बताया कि एक फैक्ट्री के तहखाने से जब बाल श्रमिको मुक्त कराकर जब बाहर लाया गया तो वे बाल श्रमिक सूर्य का प्रकाश सहन नहीं कर पाए। उनकी आँखें चुनधियाँ गई क्योंकि ये बाल श्रमिक 10.12 वर्षों से तहखाने में बन्द थे।

कोई भी उद्योग ऐसा नहीं जहाँ काम करने पर बच्चों को भयंकर रोग जैसे- टी.बी., चर्मरोग, आँखों की रोशनी कम होना, जोड़ों का दर्द, दमा, बेहोशी आदि बीमारियाँ न होती हो। अगर इन बीमारियों से बच भी जाते हैं तो इन्हें खाँसी, सर्दी की शिकायत, शरीर में दर्द, भूख नहीं लगने जैसी शिकायतें हो जाती हैं।

सबसे दुःखद बात यह है कि सुबह से शाम तक काम करने वाले इन बच्चों को खाने में सूखी रोटी के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। इनका हर तरफ से शोषण होता है। ये बाल मजदूर जब जवान होते हैं बीमारी, भूखमरी व गरीबी से इनके कंधे पहले ही इतने ही झुक जाते हैं कि अपने परिवार का बोझ नहीं उठा पाते।

गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा, बढ़ती जनसंख्या, महँगाई, भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण इत्यादि कई बालश्रम के कारण हैं।

### कानूनी प्रयास

भारत सरकार शुरु से ही बालश्रम को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील रही है। सरकारी व गैर-सरकारी संगठन जैसे- यूनिसेफ, अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियाँ आदि इस दिशा में मिलजुल कर प्रयास कर रही हैं। भारत सरकार स्वतंत्रता पूर्व से लेकर अभी बालश्रम निषेध और विनियम संशोधन अधिनियम 2016 तक कानून बना रही है। बालश्रम उन्मूलन हेतु बनाए गए कानूनी प्रावधान निम्न हैं-

1938 बाल रोजगार अधिनियम, 1948 कारखाना अधिनियम, 1951 में बागान अधिनियम, खान अधिनियम 1952, 1986 में बाल अधिनियम (निषेध व नियमन), 2000 में किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम बनाया गया। कानूनों की विशाल श्रेणी के बावजूद बाल मजदूरी की स्थितियों में कोई सुधार दिखाई नहीं देता।

➤ बालश्रम (निषेध व नियमन) संशोधन अधिनियम 2016 कठोर दण्ड का प्रावधान करता है।

इस अधिनियम के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से परिवारों से जुड़े व्यवसाय को छोड़कर काम करना संज्ञेय अपराध माना जाएगा।

- 14 से 18 वर्ष के बच्चे को किशोर के रूप में परिभाषित गया व उन्हें खतरनाक उद्योगों में काम करने के लिए निषेध किया गया।
- अब 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम पर रखने पर कैंद की अवधि 6 माह से बढ़ाकर 2 वर्ष कर दी गई है तथा जुर्माना राशि 20,000 से 50,000 तक कर दी गई है। इसे शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 से जोड़ा गया है ताकि बच्चे अपने स्कूल समय के बाद पारिवारिक व्यवसाय में घर वालों की मदद कर सकें।

### समाधान

ये तो कानूनी प्रावधान है परन्तु वास्तविक धरातल पर सराहनीय प्रयास चिल्ड्रन फाउन्डेशन के संस्थापक कैलाश सत्यार्थी जी का है जिन्हें न केवल देश बल्कि विदेशों में भी इसी कारण प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। बाल मजदूरों को मुक्त कराने का उनका अभियान 'बचपन बचाओ' आन्दोलन जो 1980 में प्रारम्भ किया गया, आज वैश्विक मान्यता मिल चुकी है।

1991 में उन्होंने रगमार्क आन्दोलन किया। रगमार्क यदि किसी कालीन पर लगा दिया जाए तो इसका अर्थ है कि यह कालीन बालश्रम से जुड़ी हुई नहीं है। उनका अनुरोध था कि लोग उन्ही कालीन को खरीदें जो रगमार्क वाली हो। यह एक अच्छा प्रयास था। इसी तरह का एक अभियान 'हंड्रेड मिलियन फॉर हंड्रेड मिलियन' भी कैलाश सत्यार्थी ने बाल मजदूरों को समाप्त करने के लिए प्रारम्भ किया। इस अभियान के तहत वे दुनिया 10 करोड़ युवाओं को जोड़ना चाहते हैं ताकि इन युवाओं को जाग्रत कर उनमें इन वंचित बच्चों के लिए जज्बा पैदा करें।

सरकारी प्रयासों में एक प्रयास श्रम व रोजगार मंत्रालय द्वारा देश को बालश्रम मुक्त करने के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म PENCIL पोर्टल तैयार किया गया है जिसके जरिए कोई भी व्यक्ति बालश्रम से सम्बन्धित शिकायत दर्ज करा सकता है। बालश्रम से मुक्त कराए

गए बाल मजदूरों के पुर्नवास के लिए राष्ट्रीय बालश्रम परियोजना (NCLP) योजना भी है जो उन्हें शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मध्याह्न भोजन, स्वास्थ्य देखभाल आदि प्रदान करता है।

समस्या का दूसरा आयाम भी है। फैक्ट्रियों में कार्यरत बाल श्रमिकों के अनुसार "रोजगार उन्हें आत्मविश्वास तथा पेट भरने के लिए धन देता है।" अमेरिकी कांग्रेस के एक विधेयक के फलस्वरूप 1994 में जब बाल श्रमिकों द्वारा निर्मित कपड़े के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया गया तो बांग्लादेश के कपड़ा मिलों के मालिकों ने पचास हजार बाल श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया। परिणाम यह हुआ कि इनमें से कुछ को भीख मांगने तथा कुछ को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य होना पड़ा।

अतः हमें केवल बाल श्रमिकों को मुक्त कराना ही नहीं बल्कि उनका पुर्नवास भी करना है। आज इस अभिशाप से मुक्त होना है तो न केवल संगठित प्रयास बल्कि व्यक्तिगत प्रयास भी करने होंगे। हम भी उन रेस्टोरेंट, होटलों का त्याग कर सकते हैं जहाँ बाल श्रमिक काम करते हैं। उन उद्योगों की बनी वस्तुओं का त्याग कर सकते हैं जिनमें बालश्रम जुड़ा है। जिस तरह विश्वविद्यालय गाँव गोद लेती है उसकी जगह 50 या 100 बाल श्रमिकों को मुक्त कर पुर्नवास का बीड़ा उठाए तो भारत में इस समस्या से छूटकारा मिल सकता है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बालश्रम - डॉ. श्रीनाथ शर्मा, अमन प्रकाशन, सागर।
2. बाल अधिकार तथा बाल शोषण - प्रो. मधुसुदन त्रिपाठी, खुशी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. भारत में बाल श्रमिक समस्याएँ एवं सम्भावित निराकरण - डॉ. साहिब सिंह वर्मा, केन्द्रीय श्रम मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. श्रम समस्याएँ एवं सामाजिक सुरक्षा - एस.सी. सक्सेना, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ।
5. बाल श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक समस्याएँ : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन - अशोक कुमार पाण्डेय, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर।

# पश्चिमी राजस्थान में काष्ठ उद्योग : दशा एवं दिशा (20 वीं सदी के पूर्वार्द्ध के संदर्भ में)

डॉ. पुष्पेन्द्र सिंह

व्याख्याता, डॉ. पदमचंद बिलम कंवर रा.उ.मा.वि., जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

पश्चिमी राजस्थान का काष्ठ उद्योग स्वतंत्रता से पूर्व उन्नत अवस्था में था जिसमें विभिन्न तरह की वस्तुओं का निर्माण होता था जो प्रायः यहां के सभी गांवों में बनायी जाती थी जोधपुर का काष्ठ उद्योग प्राचीन है। जहां हस्तकला से संबंधित वस्तुएं विशेष हैं। यहां मारवाड़ टिम्बर फैक्टरी की स्थापना भी हुई। इसी तरह उदयपुर, बीकानेर और जैसलमेर का काष्ठ उद्योग भी अपनी विशिष्टता के लिये प्रसिद्ध था। लकड़ी का प्रयोग सामान्य दिनचर्या का भाग था और इसलिए लकड़ी का उद्योग अर्थ व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा जहां कलाकरों को अपना हुनर दिखाने का अवसर भी मिला तथा राजाओं द्वारा सम्मानित भी हुए। अनेक वर्षों तक यह अनवरत रूप से चलता रहा।

**संकेताक्षर :** काष्ठ, उद्योग, जोधपुर, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर, आराधर, यंत्र, उपकरण, कारीगर।

**सं**सार में जिस देश के लोगों ने सर्वप्रथम सभ्यता सीखी, वह देश भारत है। मोहन जोदड़ों व हड़प्पा की खुदाई से उनका नगर नियोजन, गंदे पानी की निकासी हेतु नालियाँ, दो मंजिला इमारतें, विशाल स्नानागार आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेखित विशाल किले व महलों का वर्णन मिलता है। जब प्राचीन किले व महल बनते थे तो उनकी सुरक्षा हेतु दरवाजे व खिड़कियाँ भी बनाते थे। पलंग, पाट, खाट, सिंहासन, पालने व अन्य प्रकार का फर्नीचर लकड़ी (काष्ठ) से ही बनाया जाता था। प्राचीन समय से ही परिपक्व (पक्के) वृक्षों को काट कर उनसे लकड़ी व लट्टे निकाले जाते थे तथा उनका उपयोग फर्नीचर आदि बनाने में किया जाता रहा है। पुराने समय में मकानों व भवनों की छतें भी लकड़ी से बनाई जाती थी। लकड़ी की छतों से बने कमरे स्वतः वातानुकूलित होते हैं। ये कमरे सर्दी के मौसम में गर्म व गर्मी के मौसम में ठंडे रहते हैं। प्राचीन किलों के बड़े-बड़े विशालकाय दरवाजे तथा उन दरवाजों को खोलने व बन्द करने की सुव्यवस्था बहुत उन्नत थी। राजा महाराजाओं के महलों के दरवाजों व खिड़कियों पर की गई सुन्दर खुदाई व नक्काशी, महलों में बिछे पलंग, पाट, सिंहासन, पालने, झूले आदि लकड़ी के बनाये जाते थे। उन पर विभिन्न धातुओं के चद्दरों की कारीगरी, हाथी दाँत का कार्य अपनी अनुपम छटा लिए हुए आज भी दर्शनीय है। लकड़ी के बड़े-बड़े सन्दूक, नमक-मिर्च रखने की मसालादानी, लकड़ी के बर्तन आदि भी अपनी अनुपम छटा लिए राजस्थान के प्राचीन काष्ठ उद्योग की जानकारी कराते हैं।

राजस्थान का काष्ठ उद्योग केवल अमीरों के लिए ही नहीं, बल्कि गरीब किसानों के लिए भी महत्वपूर्ण था। हल बनाना, बैलगाड़ी बनाना, रहट व चरखी बनाने में काष्ठ का ही उपयोग किया जाता रहा है। राजस्थान में वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त काष्ठ उद्योग, धातु उद्योग एवं चर्म उद्योग का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्लास्टिक के आविष्कार के पूर्व तो इस उद्योग का दैनिक जीवन की वस्तुओं को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान था।

स्वतंत्रता पूर्व राजस्थान में काष्ठ उद्योग का एक महत्पूर्ण स्थान था। इस उद्योग से मुख्य रूप से एक ही जाति जुड़ी हुई थी जिसे खाती या सुथार कहा जाता था। राजस्थान में लकड़ी की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होता था जैसे लकड़ी की चारपाई,

दरवाजे, खिड़कियाँ, फर्नीचर, कृषि यन्त्र जैसे हल, बीजबावणी, गैती एवं फावड़े के हत्ये, लकड़ी के खिलौने, मेज, कुर्सी, बच्चों के झूलने के पालने आदि सामान प्रायः पश्चिमी राजस्थान के सभी गाँवों में बनाये जाते थे। 18 वीं शताब्दी के अन्त में तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में खाती लकड़ी पर विभिन्न प्रकार की मनमोहक एवं कलात्मक डिजाइन की वस्तुएँ बनाते थे। लकड़ी के कलात्मक कार्यों का विकास भी राजस्थान से जुड़ा हुआ है। राजस्थान में लकड़ी पर नक्काशी करने की कला की प्राचीनता का आभास अमीर खुसरो के उल्लेख से मिलता है। उसने लिखा था कि जब 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भोर पर अधिपत्य किया तो उस समय उसके आस-पास के स्थानों पर काष्ठ उद्योग विकसित था। मध्यकाल में सवाईमाधोपुर एवं जहाजपुर रंगीन लकड़ी के कार्यों के लिए विशेष रूप से जाने जाते थे। उस समय लकड़ी की चूड़ियाँ, आलमारी, पलंग आदि कलात्मक कार्य प्रचलित थे। ऊँटों की काठियाँ भी लकड़ी से बनती थीं। खाती विश्वकर्मा भगवान में विश्वास रखते हैं। खाती जाति अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बताते हैं। इनकी 120 गौत्र होती है<sup>3</sup>। ये अपनी कुल देवी सावित्री को मानते हैं। 18 वीं सदी में प्रत्येक गाँव व कस्बा स्थानीय लकड़ी की वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रसिद्ध हुए थे। पेमा, हरिया तथा बिहारी जयपुर के प्रसिद्ध खाती हुए थे<sup>4</sup>। ये खाती विशेष प्रकार की पालकी व रथ बनाने में पारंगत थे। भीया व हेमा कलात्मक कार्य के लिए प्रसिद्ध थे जिन्हें तत्कालीन राजा महाराजाओं द्वारा उनकी कलाकारी के लिए सम्मानित किया था। खातुत-ए-अहलकरन के अनुसार फकीरा को संगीत उपकरण बनाने के लिए आठ आना प्रतिदिन दिये जाते थे। जोधपुर के सोजत व नागौर में लकड़ी के सुन्दर खिलौने बनाए जाते थे। जोधपुर राजघराने के लिए सोजत से चकरिया-100, लुन लुनिया-60, चटपटा-25 जोड़ी आदि खिलौने बनाये गये थे<sup>5</sup>।

उदयपुर भी लकड़ी के खिलौनों के लिए प्रसिद्ध था। लकड़ी उद्योग का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ हुआ है। प्राचीन काल में जब लकड़ी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी और उसकी खपत अपेक्षाकृत कम थी तब अधिकांश लकड़ी उत्तम श्रेणी की काम में ली जाती थी। प्राचीन काल से ही काष्ठ उद्योग का राज्य की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लकड़ी की बनी वस्तुएँ सामान्य दिनचर्या का हिस्सा होती थी। लकड़ी का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जाता था।

1. **इमारती उद्योग सामान** - इस उद्योग में भवनों से संबंधित लकड़ी का बहुत सी वस्तुओं का निर्माण होता था जिनमें छत, दरवाजे, खिड़कियाँ, आलमारी, लाइट फिटिंग, दरवाजे के बारोट, कैबिन आदि मुख्य थे। दुकानों में सामान रखने, रोकड़ गल्ला हेतु आदि कार्य लकड़ी से होता है।

2. **फर्नीचर उद्योग** - इस उद्योग में लकड़ी की विभिन्न कलात्मक वस्तुएँ बनाई जाती थी जैसे मेज, कुर्सी, स्टूल, डेस्क, चारपाई, पलंग, चाय टेबल (सेन्ट्रल टेबल), डाइनिंग टेबल सेट, ड्रेसिंग टेबल आदि अनेक प्रकार का सामान बनाया जाता था।

3. **कृषि यन्त्र उद्योग** - यह उद्योग मुख्यतः गांवों में विकसित था। गांवों में शि कार्यों में प्रयुक्त होने वाले यन्त्र जैसे देशी हल, बैलगाड़ी, कुल्हाड़ी, फावड़ा, गैती के हत्ये, दंताली के हत्ये, लकड़ी के चड़स का सामान, रहट का सामान तथा बैलों का जवाड़ा आदि यंत्र लकड़ी के ही बनाये जाते थे।

(i) **जोधपुर काष्ठ उद्योग** - जोधपुर राज्य में काष्ठ उद्योग सदियों पुराना है। इसका इतिहास अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ की हस्तकला से सम्बन्धित काष्ठ की वस्तुएं विशेष उल्लेखनीय रही है। यहाँ प्राचीन काल में लकड़ी का उपयोग केवल घरेलू वस्तुएँ बनाने तथा राज्य की इमारतें बनाने में होता था। राज्य में उत्तम श्रेणी की लकड़ी का प्रयोग राजा, महाराजाओं के उपयोग हेतु बनने वाली सामग्री में होता था। यहाँ खातियों की कर्मस्थली को आराघर कहते थे। प्राचीन काल में लकड़ी को हाथ से बनी करौती से चीरा जाता था, जिसमें श्रम अपेक्षा त अधिक लगता था।

1944 ई. में जोधपुर पहला आधुनिक (मशीन चालित) आराघर खोला गया था, जहाँ आवश्यकतानुसार लकड़ी की चिराई की जाती थी। यह आराघर गुजरात से आए एक पटेल परिवार ने खोला था। इसका नाम कच्छ आराघर था, जो पोकरण हाऊस के निकट था<sup>6</sup>। इस आराघर के कारण लकड़ी चीरना आसान हो गया था। इस आराघर की लकड़ी चीरने की क्षमता 14 घन फीट प्रति घंटे थी<sup>7</sup>। यहाँ पर मशीन 8 घंटे प्रतिदिन कार्य करती थी। यहाँ लकड़ी चीरने की कीमत प्रति 100 वर्ग फुट एक रुपया से पाँच रुपया थी<sup>8</sup>। कच्छी आराघर में प्रति वर्ष 2,70,000 वर्ग फीट लकड़ी चीरने का कार्य होता था<sup>9</sup>। इसमें 1800 रुपये का बिजली खर्च आता था। लकड़ी चीरने की कीमत अलग-अलग होती थी जो इस प्रकार है:-

लकड़ी का प्रकार	100 वर्ग फीट चीरने की कीमत
1. काली भीभाम	5 रुपये
2. भूरी भीभाम	5 रुपये
3. साल	4 रुपये
4. सागवान	4 रुपये

लकड़ी चिराई के पश्चात् बुरादा एवं लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े बचते थे। लकड़ी के टुकड़ों को ईंधन के रूप में काम में लिया जाता था तथा बुरादे का उपयोग बर्फ को पिघलाने से बचाने में प्रयोग किया जाता था। इस आराधर से प्रतिमाह 13.50 रुपये में बचे हुए टुकड़े बेचे जाते थे तथा बुरादे से प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाली आय 1300 रुपये थी।

सर्वप्रथम लकड़ी को काटकर सुखाया जाता था। तत्पश्चात् सही माप में चीरकर रख दिया जाता था और अन्त में उससे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती थीं। लकड़ी के उपकरणों में प्रमुख रूप से करोती, कुल्हाड़ी, कूट, भोंयला तथा आरी आदि थे। लकड़ी का कार्य करने वाले मजदूर दो प्रकार के थे - (1) कुशल और (2) अकुशल कारीगर।

- (1) कुशल कारीगर - लकड़ी के कार्य में पूर्ण दक्ष होता था।
- (2) अकुशल कारीगर - कुशल कारीगर की लकड़ी के कार्य में सहायता कराता था।

जोधपुर रियासत में काष्ठ उद्योग में कार्यरत पुरुषों व महिलाओं के आँकड़े निम्न हैं - मारवाड़ रियासत में 1891 में खाती पुरुष-25,705 व महिलाएँ-21,639 थीं<sup>10</sup>। वर्ष 1901 में शिव, मालाणी, जसवंतपुरा, जालोर परगना में खाती पुरुष 11,552 व महिला कार्य करने वाली 74 कुल 11,626 व्यक्ति खाती का कार्य करते थे<sup>11</sup>। लकड़ी की टोकरी व चटाई बनाने वाले परिवार 71 थे। पत्तों के फर्श व चटाई बनाने वालों की संख्या शून्य थी<sup>12</sup>। देसूरी, सिवाना व पाली परगना में चटाई बनाने वाले 78 थे<sup>13</sup>। पाली, पचपदरा, बालोतरा परगना में टोकरी बनाने वालों की संख्या 23 थी<sup>14</sup>। मेड़ता, नागौर, मूंडवा परगना में लकड़ी का काम करने वाले 84 व्यक्ति थे<sup>15</sup>, जबकि टोकरी बनाने वाले 57 व्यक्ति थे<sup>16</sup>। इसी प्रकार 1911

में खाती का मुख्य कार्य करने वाले 5,829 व्यक्ति हिन्दू थे तथा 273 मुसलमान थे। उन पर आश्रित यानी अकुशल कारीगरों की कुल संख्या 14,658 थी जिनमें 14,232 हिन्दू तथा 426 मुस्लिम थे। टोकरी बनाना, काठियाँ, कुर्सी बनाने वाले व अन्य लकड़ी का सामान बनाने वाले कुशल 1369 हिन्दू कारीगर थे उन पर आश्रित अकुशल श्रमिक 882 थे, जबकि मुख्य धंधा करने वाले 8 मुस्लिम व आश्रित कार्य करने वाले अकुशल 5 व्यक्ति थे<sup>17</sup> तथा काष्ठ उद्योग में कार्य करने वाले 13,394 व्यक्ति व चटाई बनाने वाले व टोकरी बनाने वाले कुल 1551 व्यक्ति थे। जोधपुर शहर में 603 सुथार थे व टोकरी व चटाई बनाने वाले 197 थे<sup>18</sup>। वर्ष 1940 में काष्ठ उद्योग में 6,240 पुरुष व 1135 महिलाएँ कार्यरत थी। चटाई व टोकरी बनाने वालों में 2100 पुरुष व 231 महिलाएँ थीं<sup>19</sup>। लकड़ी की बनी वस्तुओं का व्यापार करने वाले 733 व्यक्ति थे<sup>20</sup>।

चटाई का उपयोग फर्श पर बिछाने में किया जाता, जहाँ वर्षा के दिनों में नमी होने पर भी उस पर असर कम होता था। टोकरी में वस्तुएँ, सब्जियाँ आदि रखकर ऊपर लटका दी जाती थी। एक स्थान से दूसरे स्थान तक फल सब्जी लाने में टोकरियाँ का उपयोग होता था तथा चारा डालने के लिए भी टोकरियों का उपयोग होता था।

**मारवाड़ टिम्बर फैक्टरी-** काष्ठ उद्योग में जोधपुर शहर में 1912-13 में मारवाड़ टिम्बर फैक्टरी की स्थापना हुई, जिसे हाथ-हथी से चलाया जाता था। इसके मालिक जोधपुर दरबार थे। वर्ष 1912-13 में 19 मजदूर कार्यरत थे। वर्ष 1913-14 में 15 कुशल कारीगर थे। इसमें लकड़ी के विभिन्न फर्नीचर बनते थे। इसमें स्थानीय लकड़ी के साथ-साथ शीशम की लकड़ी भी काम में ली जाती थी<sup>21</sup>। वर्ष 1913-14 में 6,456 रुपये के फर्नीचर तैयार किये गये<sup>22</sup>, वर्ष 1914-15 में इस फैक्टरी को 932 रुपये का फायदा हुआ<sup>23</sup>। वर्ष 1915-16 में 13 कुशल कारीगर कार्यरत थे<sup>24</sup>। फैक्टरी का सारा कार्य रामरतन के निर्देशन में होता था<sup>25</sup>। वर्ष 1915-16 में 4,760 रु. का फर्नीचर तैयार किया गया<sup>26</sup>। वर्ष-वार कुशल श्रमिक इस प्रकार कार्यरत थे।

वर्ष	संख्या (कुशल कारीगर)
1918-19	12
1919-20	12
1920-21	16 <sup>27</sup>
1921-22	12 <sup>28</sup>
1923-24	6 <sup>29</sup>
1924-25	9 <sup>30</sup>
1925-26	12
1926-27	11 <sup>31</sup>
1927-28	12 <sup>32</sup>

(ii) **बीकानेर काष्ठ उद्योग** - बीकानेर रियासत में भी काष्ठ उद्योग में दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएँ निर्मित होती थी, जो स्थानीय आवश्यकताएँ पूरी करती थी। रियासत की ओर से टोकरी निर्माण स्कूल की स्थापना 27 जुलाई 1919 को हुई, जिसमें बाँस की टोकरियाँ, ट्रे, पंखिया, जाजम (चटाई) आदि बनाये जाते थे। इस स्कूल की

बनी वस्तुएँ बहुत प्रसिद्ध थी। कई विद्यार्थियों ने इस विद्यालय में प्रवेश लिया लेकिन उपस्थिति रोजाना कम ही विद्यार्थियों की होती थी। इस वर्ष के अन्त तक विद्यार्थियों की संख्या 18 थी<sup>33</sup>। 1920-21 में कारपेण्टरी स्कूल में 9 विद्यार्थी ही रह गये<sup>34</sup>। 1910 में बीकानेर रियासत में काष्ठ उद्योग में 836 कारीगर कार्यरत थे<sup>35</sup>। 1920 में काष्ठ उद्योग में 4,922 लोग थे<sup>36</sup>। 1930 में 4,489 व्यक्ति काष्ठ उद्योग में कार्यरत थे<sup>37</sup>।

(iii) **जैसलमेर काष्ठ उद्योग** - जैसलमेर रियासत में लकड़ी की काठियाँ बनाने का काम प्रसिद्ध था। यहाँ ऊँट व घोड़ों की काठियाँ बनती थी, जिनका स्थानीय उपयोग के साथ-साथ निर्यात भी होता था। इसके अतिरिक्त यहाँ बांस की टोकरियाँ भी बनती थी। उनका भी व्यापार विकसित अवस्था में था। बांस की टोकरियाँ के निर्यात सम्बन्धी आँकड़े इस सारणी द्वारा दर्शाये गए हैं :-

वर्ष	निर्यात मात्रा (मन)	रुपये
1911-12	115	आंकड़े उपलब्ध नहीं <sup>38</sup>
1912-13	70	आंकड़े उपलब्ध नहीं <sup>39</sup>
1915-16	आंकड़े उपलब्ध नहीं	1,023/-
1916-17	आंकड़े उपलब्ध नहीं	1,177/- <sup>40</sup>
1917-18	169	2,028/-
1918-19	457	3,656/- <sup>41</sup>
1919-20	187	2735/-
1920-21	166	2,490/- <sup>42</sup>
1921-22	85	1,275/- <sup>43</sup>
1922-23	125	1,875/-
1923-24	187	2,805/- <sup>44</sup>
1924-25	133	1,995/- <sup>45</sup>
1925-26	188	2,820/- <sup>46</sup>
1926-27	96	1,440/- <sup>47</sup>
1927-28	150	2,250/- <sup>48</sup>
1928-29	68	952/-
1929-30	61	915/- <sup>49</sup>

1930-31	70	1,050/- <sup>50</sup>
1931-32	64	960/- <sup>51</sup>
1932-33	62	928/- <sup>52</sup>
1933-34	89	1,330/- <sup>53</sup>
1934-35	103	1,545/- <sup>54</sup>
1935-36	156	2,336/- <sup>55</sup>
1936-37	429	5,145/- <sup>56</sup>
1937-38	55	660/- <sup>57</sup>
1938-39	133	1,600/- <sup>58</sup>
1939-40	96	1,147/- <sup>59</sup>
1940-41	94	1,411/- <sup>60</sup>

इसी प्रकार ऊँट व घोड़े की काठियाँ भी निर्यात हुई जो वर्षवार इस प्रकार है :-

वर्ष	संख्या	रुपये
1910-11	65	2,264 <sup>61</sup>
1911-12	78	- <sup>62</sup>
1912-13	120	- <sup>63</sup>
1915-16	-	2,514
1916-17	-	480 <sup>64</sup>
1917-18	67	804
1918-19	73	876 <sup>65</sup>
1919-20	80	960
1920-21	102	224 <sup>66</sup>
1921-22	46	552 <sup>67</sup>
1922-23	79	948
1923-24	79	912 <sup>68</sup>
1924-25	115	380 <sup>69</sup>
1925-26	106	1,272 <sup>70</sup>
1926-27	69	828 <sup>71</sup>
1927-28	73	1,365 <sup>72</sup>
1928-29	47	1,048
1929-30	24	480 <sup>73</sup>
1930-31	20	370 <sup>74</sup>
1931-32	27	525 <sup>75</sup>
1932-33	18	358 <sup>76</sup>
1933-34	33	625 <sup>77</sup>
1934-35	45	903 <sup>78</sup>
1935-36	50	934 <sup>79</sup>

1936-37	34	629 <sup>80</sup>
1937-38	46	776 <sup>81</sup>
1938-39	31	599 <sup>82</sup>
1939-40	28	527 <sup>83</sup>
1940-41	19	345 <sup>84</sup>

इस प्रकार पश्चिमी राजस्थान में काष्ठ उद्योग का विशिष्ट स्थान रहा। कई वर्षों में काठियाँ की मांग बढ़ने पर भाव अच्छे प्राप्त हुए एवं कई वर्षों में मांग कम होने पर भाव कम मिले लेकिन प्रतिवर्ष अनवरत रूप से निर्यात होता रहा।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाईफ इन मिडिवल राजस्थान, जयपुर (1968) पृष्ठ 305
- ब्रज किशोर शर्मा, आधुनिक राजस्थान का आर्थिक विकास जयपुर (1993) पृष्ठ 318.
- मुंशी हरदयाल सिंह "दी कास्ट ऑफ मारवाड़, जोधपुर (1991) पृष्ठ 167
- बी.एल. गुप्ता, ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, जयपुर (1987) पृष्ठ 167
- वही-, पृष्ठ 64
- सेठ उम्मेद चंद, सर्वे ऑफ टिम्बर इण्डस्ट्री, जोधपुर 1962-63 अप्रकाशित शोध ग्रन्थ (जय नारायण व्यास वि., जोधपुर) पृष्ठ 16
- वही- पृष्ठ 18
- वही- पृष्ठ 19
- वही- पृष्ठ 20
- जनगणना रिपोर्ट - मारवाड़ रियासत वर्ष 1891 (रा.रा.अ. जोधपुर) युप ग्ग
- वही- वर्ष 1901, पृष्ठ 69
- वही- पृष्ठ 384
- वही- पृष्ठ 405
- वही- पृष्ठ 566
- वही- पृष्ठ 697
- वही- पृष्ठ 698
- वही- वर्ष 1911 पृष्ठ 375
- वही- वर्ष 1931 पृष्ठ 64
- वही- वर्ष 1941, (रा.रा.अ. जोधपुर) पृष्ठ 78
- वही- पृष्ठ 79
- प्रशासनिक रिपोर्ट - मारवाड़ रियासत वर्ष 1913-14 (रा.रा.अ. जोधपुर) पृष्ठ 79
- वही- पृष्ठ 39
- वही- वर्ष 1914-15, पृष्ठ 31
- वही- वर्ष 1915-16, पृष्ठ 17
- वही- पृष्ठ 21
- वही- पृष्ठ 23
- वही- वर्ष 1920-21, पृष्ठ 43
- वही- वर्ष 1921-22, पृष्ठ 35
- वही- वर्ष 1922-23, पृष्ठ 36
- वही- वर्ष 1923-24, पृष्ठ 29
- वही- वर्ष 1924-26, पृष्ठ 33
- वही- वर्ष 1927-28, पृष्ठ 32
- वही- बीकानेर रियासत वर्ष 1919-20 (रा.रा.अ. बीकानेर) पृष्ठ 76
- वही- वर्ष 1920-21, पृष्ठ 67
- जनगणना रिपोर्ट, बीकानेर रियासत (रा.रा.अ. बीकानेर) वर्ष 1911 पृष्ठ 45
- वही- वर्ष 1921, पृष्ठ 36
- वही- वर्ष 1931, पृष्ठ 122
- प्रशासनिक रिपोर्ट - जैसलमेर रियासत वर्ष 1911-12 (रा.रा.अ. जोधपुर) पृष्ठ 47
- वही- वर्ष 1912-13, पृष्ठ 41
- वही- वर्ष 1916-17, पृष्ठ 150
- वही- वर्ष 1918-19, पृष्ठ 202
- वही- वर्ष 1920-21, पृष्ठ 202
- वही- वर्ष 1921-22, पृष्ठ 202
- वही- वर्ष 1923-24, पृष्ठ 202
- वही- वर्ष 1924-25, पृष्ठ 197
- वही- वर्ष 1925-26, पृष्ठ 203
- वही- वर्ष 1926-27, पृष्ठ 203
- वही- वर्ष 1927-28, पृष्ठ 65
- वही- वर्ष 1929-30, पृष्ठ 65
- वही- वर्ष 1930-31, पृष्ठ 65
- वही- वर्ष 1931-32, पृष्ठ 65
- वही- वर्ष 1932-33, पृष्ठ 63
- वही- वर्ष 1933-34, पृष्ठ 63
- वही- वर्ष 1934-35, पृष्ठ 63
- वही- वर्ष 1935-36, पृष्ठ 65
- वही- वर्ष 1936-37, पृष्ठ 65

57. -वही- वर्ष 1937-38, पृष्ठ 65
58. -वही- वर्ष 1938-39, पृष्ठ 69
59. -वही- वर्ष 1939-40, पृष्ठ 66
60. -वही- वर्ष 1940-41, पृष्ठ 66
61. -वही- वर्ष 1910-11, पृष्ठ 8
62. -वही- वर्ष 1910-11, पृष्ठ 47
63. -वही- वर्ष 1912-13, पृष्ठ 41
64. -वही- वर्ष 1916-17, पृष्ठ 150
65. -वही- वर्ष 1918-19, पृष्ठ 202
66. -वही- वर्ष 1920-21, पृष्ठ 149
67. -वही- वर्ष 1921-22, पृष्ठ 202
68. -वही- वर्ष 1923-24, पृष्ठ 202
69. -वही- वर्ष 1924-25, पृष्ठ 197
70. -वही- वर्ष 1925-26, पृष्ठ 203

71. -वही- वर्ष 1926-27, पृष्ठ 203
72. -वही- वर्ष 1927-28, पृष्ठ 65
73. -वही- वर्ष 1929-30, पृष्ठ 65
74. -वही- वर्ष 1930-31, पृष्ठ 65
75. -वही- वर्ष 1931-32, पृष्ठ 65
76. -वही- वर्ष 1932-33, पृष्ठ 63
77. -वही- वर्ष 1933-34, पृष्ठ 63
78. -वही- वर्ष 1934-35, पृष्ठ 63
79. -वही- वर्ष 1935-36, पृष्ठ 65
80. -वही- वर्ष 1936-37, पृष्ठ 65
81. -वही- वर्ष 1937-38, पृष्ठ 65
82. -वही- वर्ष 1938-39, पृष्ठ 64
83. -वही- वर्ष 1939-40, पृष्ठ 66
84. -वही- वर्ष 1940-41, पृष्ठ 66

# डॉ. उषा यादव के उपन्यासों में वर्णित सामाजिक सरोकार

योगेश शर्मा

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

समकालीन युग में डॉ. उषा यादव अपनी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से आज के समाज का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट करती हैं साथ ही स्त्री की पीड़ा तथा समाज के खोखले रूप को स्पष्ट करते हुए समाज में जागरूकता का कलात्मक परिचय प्रदान किया है। इन्होंने निर्धन व गरीब परिवारों की शोषित स्थिति का चित्रण, मानवीय संवेदनाएं, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, स्त्री की दशा आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। लेखिका ने जागरूकता का परिचय देते हुए लेखकीय दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया है और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है।

**संकेताक्षर :** समाज, संघर्ष, शोषण, इंसायित, दुर्दशा, पुर्नवास, आदर्श, संवेदना, उत्पीड़न, निराशा, आक्रोश।

**सा**हित्यकार की रचना की जड़ें समाज में बहुत गहरी समाई होती हैं। आज के साहित्य समाजशास्त्री रचना की अस्मिता को स्वीकार करते हुए समाज से उसके सम्बन्ध का विश्लेषण करते हैं। समाज के साथ ही साहित्यकार की लेखनी की स्थिति बदल जाती है। साहित्यकार और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः साहित्य समाज से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। यदि साहित्य शरीर है तो समाज उसकी आत्मा है।

आज विश्व में उपन्यास साहित्य जितना विकास पर पहुँचा है, उतना साहित्य का और कोई अंग नहीं। यह इसलिए कि अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता, जीवन दर्शन को स्पष्ट करने का पूरा अवसर संभवतः उपन्यास में ही मिलता है। जीवन के सभी अंगों की अभिव्यक्ति उपन्यासों में भली भाँति होती है। जीवन के विभिन्न स्थूल एवं सूक्ष्म चित्र इसी में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद ने इसलिए सही लिखा है कि—“समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्त्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यासों में स्थान है। यहाँ लेखक को अपनी कलम का जौहर दिखाने का जितना अवसर मिलता है उतना साहित्य के और किसी अंग में नहीं मिल सकता।”

हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित उपन्यास लेखिका डॉ. उषा यादव का जन्म 2 अप्रैल 1948 ई. को उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में हुआ। उन्होंने हिन्दी एवं इतिहास विषय में एम.ए. की उपाधि हासिल की तथा हिन्दी में पी-एच.डी. व डी.लिट् की उपाधियाँ प्राप्त की। वह पहले केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में प्रोफेसर भी रही हैं। डॉ. उषा यादव एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक एवं बाल उपन्यास रचकर साहित्य की दुनिया में अपना अलग मुकाम हासिल किया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्न हैं—

**कहानी संग्रह**—सपनों का इंद्रधनुष, जाने कितने कैक्टस, सुनो जयंती, चाँदी की हँसली। **बाल कहानियाँ**—सपने सच हुए, बजी बाँसुरी, दीप से दीप जल, परी कथाएँ, दूसरा पंचतंत्र, झोले में चाँद। **नाटक**—सागर मंथन। **उपन्यास**—प्रकाश की ओर, एक और अहल्या, आँसों का आकाश, कितने नीलकण्ठ, कथांतर, अमावस की रात, काहे रे नलिनी, दीप अकेला, स्वाँग, नन्ही हाल चुन्नी, महालया। **बाल उपन्यास**—लाखों में एक, सबक, हीरे का मोल, किले का रहस्य, सोना की आँखें, फिर से हँसो धरती माँ, नाचे जंगल में मोर, पारस पत्थर, नन्हा दाधीच, सोने की खान आदि प्रसिद्ध रचनाएँ रही हैं।

‘एक और अहल्या’ उपन्यास में लेखिका ने एक नारी की व्यथा का चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका नेहा सर्वगुण

सम्पन्न है परन्तु वैश्या की बेटी होने के कारण उसे समाज स्वीकारता नहीं है। लेकिन शिक्षित होकर वह अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है। उसका पति रफीक भी उसे छोड़ देता है। इस उपन्यास में नेहा का संघर्षमय जीवन चित्रित किया है। अतीत को छोड़कर वह पढ़ाई-लिखाई करके पी-एच.डी. करती है तब उसके गुरु डॉ. आदर्श उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं, तब वह उन्हें डाटती हुई कहती है-“अपने से बड़ी आयु के स्त्री को माँ और छोटी को बेटी कहना हमारे यहाँ सामान्य शिष्टाचार माना जाता है। कहने पर से हर स्त्री न माँ बन जाती है, न बेटी।”<sup>2</sup>

‘आँखों का आकाश’ उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह को चित्रित किया गया है। उपन्यास की नायिका सुधि अपने ही ट्यूशन टीचर सुहास से शादी करती है। जब उसके परिवार वाले इसका विरोध करते हैं तो मामला कोर्ट में पहुँचता है। तब सुधि अपने परिवार वालों के विरुद्ध कोर्ट में जज साहब के सामने निवेदन करती है-“हा ! मैं, सुहास के साथ शादी कर चुकी हूँ, और उसी के साथ रहना चाहती हूँ, मैं बालिग हूँ। एम.ए. पास हूँ। अपना यह फैसला पूरे होश हवाश में बिना किसी के दबाव के कर रही हूँ।”<sup>3</sup>

‘कथांतर’ उपन्यास में मानवीय संवेदना को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास के नारी पात्रों में मणि, माला, गंगा तथा शारदा की कहानियाँ हैं। इन स्त्रियों की कहानियों में उनका शारीरिक तथा मानसिक शोषण उजागर किया गया है। देवेन्द्रनाथ बाबू एक आदर्श मार्गदर्शक के रूप में सामने आते हैं। जो इन पीड़ित स्त्रियों का हौसला बुलन्द करते हैं तथा उन्हें सही मार्ग पर चलने का आग्रह करते हैं। गंगा एक बाल विधवा है जो अपनी जेठानी के सात बच्चों का पालन पोषण करती है। लेकिन गंगा जब माँ बनने वाली होती है तो उसकी जेठानी सुशीला उसे बहुत खरी खोटी सुनाती है, गंगा सिर्फ इतना ही कह पाती है कि-“मैं सचमुच बेकसूर हूँ जीजी, औरत जात की बिसात हि कितनी ? जुल्म जोर से मर्द ही उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता है।”<sup>4</sup> सुशीला का पति ही गंगा से जबरदस्ती अवैध सम्बन्ध बनाता है। जब सुशीला को पता चलता है तो वह अपने पति को जान से मारने की धमकी देती है। इस तरह इस उपन्यास में पुरुष वर्ग की जोर जबरदस्ती का चित्रण किया गया है। लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री के आत्मनिर्भर होने की बात कही है।

‘अमावस की रात’ उपन्यास में आज के युग में

जादू-टोना व तंत्र-मंत्र इत्यादि अंधविश्वासों के माध्यम से एक लोभी तांत्रिक के धनवान बनने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। पं. श्यामसुंदर व उसकी पत्नी मन्नों गाँव के अनपढ़, अशिक्षित लोगों को तंत्र-मंत्र से प्रभावित कर उनसे पैसा बटोरना चाहते हैं। पंडित के घर के सामने एक शिक्षित परिवार की गरिमा अपने बच्चों के साथ रहती है। वह आर्य समाजी एवं स्वतंत्र विचार वाली स्त्री है जो इन जादू-टोना पर विश्वास नहीं करती है। मन्नों गरिमा के घर से एक-एक चीज लेकर पंडितजी को देती है, लेकिन गरिमा पर जादू का कोई असर नहीं होता है। तब पंडितजी कहते हैं कि-“इस महिला में जरूर कोई विलक्षणता है, जो इसे दूसरों से अलग कर देती है। अपने आर्य समाजी संस्कारों की वजह से किसी रुढ़ि-आडम्बर में नहीं पड़ती, किसी चीज में शक नहीं करती, किसी बात की छानबीन नहीं करती, फिर भी ऐन वक्त पर पता नहीं कौनसी अदृश्य शक्ति इसकी रक्षा कवच बन जाती है।”<sup>5</sup> इस उपन्यास में दूसरों के सुखों को छिनकर अपना घर बसाने वाले ऐसी दोगी तांत्रिक दम्पति पर लेखिका ने कटाक्ष किया है तथा आज के युग में खत्म होती इंसानियत को भी उजागर किया है।

‘काहे रे नलिनी’ उपन्यास में आज के समय में नारी को देह व्यापार में किसी न किसी रूप में धकेलने की ओर संकेत किया गया है। इस उपन्यास में पुरुष वर्ग की यौन प्रवृत्ति तथा धोखेबाजी का भी खुलासा होता है। नायिका में नंदिता एक जांबाज पुलिस ऑफिसर है। इस उपन्यास में दूथीमाया और मनकुमारी दो नेपाली बहिनों को दिलबहादुर बहला फुसलाकर दिल्ली ले आता है तथा सायरा के कोठे पर उन्हें बेच देता है। दूथी माया एक दिन नंदिता के साथ मिलकर कोठे की कई नाबालिग लड़कियों को छुड़वाती है। जब नंदिता को पता चलता है कि इस कार्य में कुछ पुलिस वाले भी मिले हुए हैं तो वह कहती है-“कहीं ब्यूटी पार्लर के नाम पर दैहिक शोषण की दुकाने सजी हैं। कहीं बार डांसर के रूप में औरतों की सप्लाई हैं और कहीं पुराने ढंग से कोठे के फाइव स्टार होटल के नए प्रतिरूप हैं, पर इन रंग-रंग के मोतियों की एक माला बनाकर धारण करने वाला वह कंठ अंतर्धान है।”<sup>6</sup> इस प्रकार नंदिता ने आज की नारी की दुर्दशा को स्पष्ट किया है। नंदिता निष्पक्ष भाव से दलित लड़कियों के पुर्नवास हेतु तथा वह एक समाज सुधारक के रूप में काम करती है।

‘नन्ही लाल चुन्नी’ उपन्यास में भी नारी देह व्यापार के

घृणित कार्य को चित्रित किया गया है साथ ही दलित लड़कियों का यौन शोषण और राजनेताओं के गलत इरादों को भी इसमें चित्रित किया गया है। गरीबी के कारण दलित लड़कियां देह व्यापार की ओर अग्रसर होती हैं। इस उपन्यास में डी.सी.पी. के रूप में अनन्या नाम की ऑफिसर का सराहनीय कार्य इसमें उद्घाटित होता है। उपन्यास में राधा एक गरीब लड़की है जो कि अपनी सहेली सीमा के साथ लोगों के घर झाड़ू-पोछा का कार्य करती हैं। एक दिन राधा और उसकी सहेली सीमा काम करके रात को एक सुनसान रास्ते से निकलती हैं तो कुछ लड़के राधा की खूबसूरती देखकर उसे पकड़ कर जरीना के कोठे पर बेच देते हैं और सीमा को वही छोड़ कर चले जाते हैं। उपन्यास में मीरा नाम की एक समाज सुधारक की कर्तूतों का भी खुलासा किया गया है। जो राधा को अपने घर में पनाह देती है लेकिन मीरा का पति सुरजभान राधा को अपनी हवस का शिकार बनाता है। राधा की यातनाओं एवं पीड़ाओं का लेखिका ने वर्णन इन शब्दों में किया है-“तभी एक दिन दलित नेता की आलीशान कोठी के भीतर एक दलित बालिका की इज्जत एक बार फिर लुटी गई।”<sup>7</sup> राधा बहुत दुःखी होती है तभी डी.एस.पी. अनन्या उसे सहारा देती है तथा जरीना के कोठे पर छपा मारती है। इस प्रकार उपन्यास में देह शोषण की शिकार लड़कियों की व्यथा को उजागर किया गया है।

‘कितने नीलकंठ’ उपन्यास में आज की शिक्षा जगत की भ्रष्ट व्यवस्था को उजागर किया गया है। कथा का नायक अभय है, जो अपने जीवन में संघर्षशील है। डॉ. देवकांत के साथ वह पी-एच.डी. करता है लेकिन जब शोध-प्रबंध तैयार हो जाता है तो देवकांत उसे कहता है कि इस विषय पर तो काम हो चुका है, तुम इसे फिर से लिखो और देवकांत ये थीसिस नीरजा मिश्रा को बेंच देता है। तब अभय बहुत क्रोधित एवं कुंठित हो जाता है। इस रचना के बारे में समकालीन साहित्य में लिखा है कि-“यहाँ शिक्षा का स्तर अब गिर ही नहीं रहा बल्कि यहाँ घटियापन की तमाम हदें पार कर चुका है। उपन्यास का अंत जैसे खुद ब खुद एक तीखे सवाल को ला खड़ा कर देता है कि आखिर यह हमारा भ्रष्ट शिक्षा तंत्र कितने और युवकों को अभय की तरह नीलकंठ बनने की और धकेलेगा ?”<sup>8</sup> लेखिका ने अभय की पीड़ा को आज के युवा वर्ग के उत्पीड़न, निराशा, आक्रोश का बखूबी चित्रण किया है।

‘दीप अकेला’ उपन्यास में स्त्री जीवन की अलग-अलग समस्याओं को उजागर किया गया है। उपन्यास की

नायिका दिव्या अपने भाई-भाभीयों के होते हुए अपने बूढ़े माँ-बाप को संभालती है। दिव्या पढ़ी-लिखी स्वतंत्र विचारों वाली सशक्त स्त्री है। वह अपने माँ-बाप के साथ रहते हुए पैसों के अभाव में नौकरी करती है। इस उपन्यास में आज के युग में बेटों के खोखले स्वार्थीपन को उजागर किया है। जो अपने उत्तरदायित्व को भूल कर सिर्फ अपने ही परिवार के बारे में ही सोचते हैं। बूढ़े माँ-बाप को बोझ समझते हैं। आज के समय की ऐसी विडम्बना को लेखिका ने बड़े ही सहज रूप में उजागर किया है। लेखिका अपनी बात में कहती है कि-“अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में नारी के अंतहीन शोषण का सिलसिला देखकर हम नितांत वीतराग हो चुके हैं। पर विपत्ति में बहादुरी की नई मिसाल कायम करती है हुई ऐसी जांबाज लड़कियां भी हमें यदा कदा दिखाई दे जाती है।”<sup>9</sup>

‘स्वॉग’ उपन्यास में लेखिका ने वर्तमान युग के भौतिकतावादी जीवन की विसंगतियों और भयावह यथार्थ से हमें रूबरू कराया है। उपन्यास में कॉलेज की एक प्राध्यापिका वसुधा के घर का काम करने वाला 25 वर्ष का अंकुर वसुधा मैडम को अश्लील पत्र भेजकर वसुधा के चरित्र को सबके सामने गिराना चाहता है। वसुधा अविवाहित स्त्री है जो अपने पिता के घर में रहती है। उनका नौकर रघु काका गाँव से अपने भतीजे अंकुर को शहर में लेकर आता है। वसुधा अंकुर को पढ़ाती लिखाती है। लेकिन अंकुर झूठ बोल कर मैडम से पैसे ऐंठता रहता है। वसुधा मैडम अंकुर को अपने बेटे के समान समझती है। तभी गरिमा वसुधा की पूर्व छात्रा रही है, वह वसुधा के मेल-अश्लील पत्र को रूकवाती है तथा सारी छानबीन करती है। तब अंकुर की सारी सच्चाई वसुधा के सामने आ जाती है। वसुधा कहती है कि-“चलो, इस दिशा में कोई शुरुआत तो हुई लेकिन इतने उलझे मामले में क्या गरिमा का पुलिसिया ओहदा कुछ कह सकेगा ? संदिग्ध छात्र-छात्राओं में से ही किसी एक को धर पकड़ होगी, या फिर...।”<sup>10</sup> वसुधा इसके बारे में किसी से नहीं कहती। इस प्रकार उपन्यास में आज की युवा पीढ़ी की चिंता को उजागर किया गया है।

### निष्कर्षत

डॉ. उषा यादव ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से आज के समाज का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट किया है साथ ही स्त्री की पीड़ा तथा समाज के खोखले रूप को स्पष्ट करते हुए समाज में जागरूकता का कलात्मक परिचय

प्रदान किया हैं। डॉ. उषा यादव समकालीन महिला लेखिकाओं में एक सशक्त लेखिका है। इन्होंने निर्धन परिवारों की शोषित स्थिति का चित्रण, मानवीय संवेदनाएं, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, स्त्री की दशा आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। लेखिका ने जागरूकता का परिचय देते हुए लेखकीय दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया है और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है।

#### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. प्रेमचंद-साहित्य का उद्देश्य, पृ. 70
2. एक और अहल्या : डॉ. उषा यादव, पृ. 41
3. आँखों का आकाश : डॉ. उषा यादव, पृ. 11
4. कथांतर : डॉ. उषा यादव, पृ. 66
5. अमावस की रात : डॉ. उषा यादव, पृ. 57
6. काहे री नलिनी : डॉ. उषा यादव, पृ. 79
7. नन्ही लाल चुन्नी : डॉ. उषा यादव, पृ. 58
8. समकालीन भारतीय साहित्य : अगस्त 2000, पृ. 150
9. अपनी बात : दीप अकेला : डॉ. उषा यादव, पृ. 5
10. स्वाँग : डॉ. उषा यादव, पृ. 147

# ‘कथादेश’ पत्रिका की कहानियों में वर्णित शोषण के विविध रूप

जयश्री दाधीच

शोध छात्रा, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

कथादेश पत्रिका की कहानियों में आज के समकालीन युग की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है। इसमें श्रमिकों का शोषण, बालकों का शोषण, बेसहारे व्यक्तियों का शोषण तथा शोषक वर्ग की क्रूरता का चित्रण किया गया है। समकालीन युग में ये पत्रिका बड़ी ही सक्षम पत्रिका है।

संकेताक्षर : गरीबी, अर्थ, शोषक, शोषण, परिवार, क्रूरता, मजबूरी, श्रमिक, अभिशाप।

**भू** मंडलीकरण के इस दौर में व्यक्ति अर्थ के पीछे दौड़ रहा है। व्यक्ति को केवल पैसों से मतलब रह गया है। रिश्तों, भावनाएँ उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखती। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति की मनोवृत्ति संकुचित होती जा रही है। व्यक्ति ऊँचा उठने के लिए पैसों की खातिर अपने से कमजोर को कुचलने में भी पीछे नहीं रहता। अर्थ की प्रधानता ने रिश्तों को तोड़ दिया है। व्यक्ति को संकीर्ण बनाया है। शोषक-शोषित वर्गों को जन्म दिया है। ‘कथादेश’ पत्रिका में आर्थिक शोषण से जुड़ी कई कहानियों को विशेष स्थान दिया गया है। ‘कथादेश’ की कहानियों ने केवल समाज की स्थिति को बयान करती हैं बल्कि जीवन, जगत समय की मानसिकता को भी प्रस्तुत करती हैं। शासक वर्ग अपने संसाधनों का धर्म, जाति, परम्पराओं और अंधविश्वासों की रक्षा करने के लिए शोषित वर्ग का शोषण करता है और अपनी संस्कृति का प्रचार करता है। शासक वर्ग एक गरीब का ना केवल शारीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी शोषण करता है।

‘कथादेश’ में बाल शोषण, स्त्री शोषण, दलित शोषण से जुड़ी अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ और सरकार मजदूरों का शोषण करने में पीछे नहीं हैं। मजदूरों को उचित श्रम नहीं दिया जाता। परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण स्त्रियों को भी अमीरों के शोषण का शिकार होना पड़ता है।

‘कथादेश’ में प्रकाशित दिनेश कर्नाटक की कहानी ‘क्रूर समय और लाटा प्रेम’ में स्त्री शोषण के मुद्दे को उठाया गया है। क्रूर समय ने दो प्रेमियों को अलग कर दिया। अरुण कुछ बनना चाहता था। अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता था। इसलिए अरुण आभा को अपना न सका। आभा भी परिवार की खराब स्थिति के चलते काम करने को मजबूर थी। उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति भोले चेहरों के पीछे क्रूरता का नकाब पहने रहते हैं। आभा जब प्रोजेक्ट के लिए अपने सर के साथ गई तो आभा को मजबूर किया गया साहब उसके शरीर को पाना चाहते थे। उस वक्त आभा को अरुण की याद आयी जो उसके शरीर को नहीं आभा को अपनाना चाहता था। आभा ने साहब से कहा-‘मेरे पिता जीवित होते, मेरा भी कोई भाई होता। मैं कभी यहाँ नहीं पहुँचती। औरत क्या है आपकी नजर में ? मैं क्या हूँ ? रॉयल चैलेन्ज, कटर, चिकन, शाही पनीर जैसी कोई चीज। मजबूरी मुझे कहाँ-कहाँ ले गयी। माँ का बोझ कम करने, बहनों की शादियों के आगे मैं हारती गयी।’<sup>1</sup>

‘कथादेश’ में प्रकाशित मजदूर वर्ग से संबंधित राजेश झरपुरे की कहानी ‘मुक्ति’ एक दयनीय श्रमिक की स्थिति को बयान करती है। खानों में काम करने वाले मजदूर सरकारी कार्यालयों में होने के बावजूद भी लाचार जीवन जीने को मजबूर है और मृत्यु को ही मुक्ति मानते हैं। एक श्रमिक का जीवन कहीं भी सुरक्षित नहीं है। सरकार सिर्फ वादें करती है और अपना लाभ

देखती है। 'मुक्ति' कहानी का मुख्य पात्र जो कि कोयला खदान में दुर्घटना के दौरान अपंग हो जाता है वह अपने सह कामगारों से कहता है—“तुम साले यदि अपने लिए कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम माइन में इंजर्ड वर्कर्स पर इतनी दया करना कि जब वह हाथ-पैर तुड़वाकर खान में तड़प रहा हो तो उसे फस्टेएड देकर बाहर अस्पताल में एडमिट मत करवाना, बल्कि वहीं उसके सिर पर कोयले का बड़ा-सा बदहा मारकर उसका सिर कुचलकर रख देना और कहना माइनिंग इंजरी है..... फेदिलिटि हो गयी है। याद रखना.....उस वर्कर का शव बाहर आये, वह नहीं। उस समय उसका शव, शव नहीं होगा, वह उसके बेटे का नियुक्ति पत्र होगा। बेराजगारी के अभिशाप से मुक्ति का वरदान, उसकी पत्नी को एक झटका दर्द तो होगा पर लँगड़े-लूले पति के दुःखों के साथ अपने सुखों का सदैव गला घोटते रहने से ज्यादा बड़ा दुःख नहीं होगा। उस परिवार का क्षोभ सवा महीनें होते-होते शोक उत्सव की रोशनी में लुप्त हो जायेगा। फिर ताउम्र जिंदगी एक खुबसूरत गिफ्ट पैक की तरह होगी।”<sup>2</sup> कहानी का मुख्य पात्र एक प्रश्न छोड़ता है कि क्या खान मजदूरों की मुक्ति संभव है..... ?

‘कथादेश’ पत्रिका में प्रकाशित भगवानदास मोरवाल की कहानी ‘चोट’ आर्थिक रूप से कमजोर दक्ष प्रजापति की कहानी है। भगवानदास, दक्ष प्रजापति जैसे असहाय व कमजोर व्यक्ति से हमें रूबरू करवाते हैं। जिन्हें समाज में मिसेस सक्सेना और आहूजा जैसे लोग कुचल देते हैं। जिनके पास पैसा और ताकत है, वह कमजोर को दबाते हैं। मिसेज सक्सेना ने दक्ष प्रजापति के स्थान पर केसवानी को प्रमोशन दे दिया जबकि दक्ष प्रजापति उससे सीनियर था। सुनियोजित षड्यंत्र के द्वारा दक्ष को आर्थिक चोट पहुँचती गयी। जो कि शारीरिक चोट से भी ज्यादा दर्द देने वाली थी। जिसका कोई इलाज नहीं किया जा सकता। दक्ष ने अपने मित्र समीर से कहा—“हम जैसे लोगों के लिए आर्थिक चोट से बड़ी और कोई चोट नहीं हो सकती। मेरा मानना है कि दौलत ही आदमी की सबसे बड़ी ताकत होती है। दौलत ही आदमी की रीढ़ होती है। अगर आदमी को किसी लायक नहीं छोड़ना है तो सबसे पहले उसकी इसी रीढ़ पर चोट करो। इस पर पड़ी चोट से वह कभी खड़ा नहीं रह सकता।”<sup>3</sup> दक्ष को ऐसी चोट मिसेस सक्सेना ने इसलिए दी क्योंकि न तो दक्ष के पास सतबीर यादव की तरह ताकत थी और न समीर, राघव

की तरह वह किसी कमीशन या आयोग से जुड़ा था, जो कही गुहार लगा पाता।

‘कथादेश’ में प्रकाशित महावीर राजी की कहानी ‘उसका लौटना’ बाल शोषण से जुड़ी कहानी है। जिसका नायक टेकला बारह वर्षीय नादान गंवई लड़का है। उसके पिता नहीं थे और माँ बीमार रहती थी। एक बहन थी जिसका गौना तभी संभव था, जब ससुराल वालों को साइकिल दी जाए। इन्हीं जिम्मेदारियों के तले दबा टेकला पांचू दा की होटल में काम करने आया। दिन भर कोल्हू के बैल की तरह काम करने पर भी पांचू दा कभी सुखी नहीं होते। उनका शोषण दिनों दिन बढ़ता ही रहता और छुट्टी दे दी जाती। एक दिन बंद की खबर सुनकर टेकला का बाल मन घर वालों से मिलने का सपना देखने लगा लेकिन अगले दिन एक घोषणा हुई जिसमें बंद को स्थगित कर दिया गया। टेकला ने हिम्मत कर पांचू दा से गाँव जाने की इजाजत माँगी। पांचू दा ने टेकला को फिर काम पर न आने को कह दिया। टेकला आधे रास्ते गया और माँ व बहन के बारे में विचार कर पुनः होटल की तरफ लौट आया उसे पोचा की का बातें याद आने लगी—“चोट के लिए अलग-अलग अँगुली को मुट्टी में तब्दील होना जरूरी है। जब तक मुट्टी नहीं बन जाती पांचू बाबू जैसे लोगों का जुल्म सहना ही होगा। यही नियति है उस जैसे लड़कों की। इस नियति को न तो भर पेट शिक्षा अभियान ही बदल सकता है, न बालश्रम उन्मूलन कानून। तब..... पांचू बाबू का आशियाना ही क्या खराब है माँ-बहिन-झूमा से मिलने का अवसर तो भविष्य में फिर कभी मिल सकता है न ?”<sup>4</sup>

‘कथादेश’ में प्रकाशित अनामिल की कहानी ‘पापा भी मुस्कुराते हैं’ आर्थिक रूप से कमजोर परिवार की कहानी है। जिसमें शोषक वर्ग की क्रूरता का चित्रण किया गया है। सुरेन्द्र गरीबी के चलते भटकता रहता है। सुरेन्द्र के सभी मालिक उसे उचित श्रम प्रदान नहीं करते और काम से निकाल देते हैं। सुरेन्द्र का बेटा अपने पिता के पुराने मालिक से पिता का पैसा लेने पहुँचा तो मालिक ने धमकी देकर भगा दिया। सुरेन्द्र का बेटा जब नये मालिक से पैसे लेने पहुँचा और पिता को सही साबित करने के लिए बोला—“सर उन्होंने आपका कोयला बेचा नहीं था, पुल्ली टूटने के कारण पिछला फाटक खुल गया था जिससे कोयला गिरा था।”<sup>5</sup>

इतना कहते ही मालिक भड़क गया और वार्ड को बुलाकर

सुरेन्द्र के बेटे को पिटवाया और मैनेजर को फोन करके कहा-“मैनेजर ! उस बोखा महाजन को तुरन्त गाड़ी से उतारकर बीस जूता मारों और भगा दो साला कहीं टिक नहीं पाया था, और हमने शरण दे दिया तो हमीं से हिसाब माँगने चला आया।”<sup>6</sup> सुरेन्द्र के बेटे ने पिता से कहा ठीक छोड़ दिये पापा। उस रात की भोर पापा बहुत खुश थे। उनका मुस्कुराना परिवार को हौसला दे रहा था।

‘कथादेश’ में प्रकाशित लोक बाबू की कहानी ‘बोधिसत्व भी नहीं आये’ एक गरीब की कहानी है जिसकी हालत उस कुत्ते के समान है जिसे उम्मीद होती है कि कोई न कोई उसके प्रति दया दिखायेगा। रिक्शा चलाने वाला रामलाल स्वयं पीड़ित होने पर भी बीमार बेटे की दवाईयों के पैसे जुटाने के लिए घर से निकलता है। रेलवे स्टेशन से सवारी पूरे पैसे दिये बगैर चला जाता है। फिर शंभू शरण जिसे रामलाल स्कूल से घर सात सालों तक छोड़ता था। वह मिला और रामलाल से काम तो करवा लिया लेकिन पैसा नहीं दिया। बंगाली बाबू ने भी रामलाल के साथ ऐसा ही किया घर में घूसा और बाहर नहीं लौटा। रामलाल इंतजार ही करता रह गया। बंगाली बाबू के घर से एक कुत्ता रामलाल के पीछे-पीछे चला आया। रामलाल ने रिक्शा बोधिवृक्ष के नीचे रोका और सोचने लगा-“अब कहाँ जाये ? शंभू शरण की प्रतीक्षा करे ? उसके घर जाये ? बंगाली बाबू से रुपये माँगे ? शेफाली की शादी में नेहरू नगर जाये ? रेलवे वाली सवारी की प्रतीक्षा करे ? पत्नी और बेटे को अभी जाकर क्या मुँह दिखाये ?”<sup>7</sup>

रामलाल कुत्ते से लिपटकर रूँआसा हो गया। उसी से पूछने लगा-“तू ही बता, मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?”<sup>8</sup> कुत्ता क्या जवाब देता जरा से सवालियों के उत्तर देने बोधिसत्व भी क्यों आते। बोधिसत्व भी नहीं आयें।

‘कथादेश’ में प्रकाशित विलास गुप्ते की कहानी ‘सस्ते आदमी’ व्यक्ति के अस्तित्व से जुड़ी कहानी है। जिस प्रकार गरीब भीलों के श्रम का कोई मोल नहीं होता। उसी

प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में भारतीयों को श्रमिक समझा जाता है। नितिन भी घर की परिस्थितियों को देखते हुए अमेरिका चला जाता है और अच्छी रकम भेजकर घर भी बनवा लेता है लेकिन वह अमेरिकी लोगों का बंधुवा बनकर अपनी विवशता अपने परिवार के सामने बताता है कि उन्हें अपनी कम्पनी में कैसे भेदभाव होते हुए भी चुप रहना पड़ता है और कुछ बोलने पर वर्क परमिट रद्द करके वापस भी भेज सकते हैं। नितिन कहता है-“कभी-कभी तो लगता है कि अहसान जताकर वे जैसे हमारा आत्मम्मान भी खरीद रहे हैं।”<sup>9</sup> देसाई साहब को नितिन के चेहरे के स्थान पर मामा लोगों (आदिवासी भील-भिलाले) का चेहरा दिखाई देने लगा। उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाता है।

वस्तुतः ‘कथादेश’ पत्रिका की कहानियों में शोषण के विविध रूपों को उकेरा गया है, जो हमारे समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। कथादेश की कहानियाँ शोषण से जुड़े मुद्दों पर व्यक्ति को सोचने के लिए मजबूर करती हैं।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिनेश कर्नाटक : क्रूर समय और लाटा प्रेम, कथादेश, दिसम्बर 2005 पृ. 52
2. राजेश झरपुरे : मुक्ति, कथादेश, नवम्बर 2004 पृ. 42
3. भगवानदास मोरवाल : चोट, कथादेश, सितम्बर 2003 पृ. 34
4. महावीर राजी : उसका लौटना, कथादेश, अप्रैल 2006 पृ. 59
5. अनामिल : पापा भी मुस्कुराते हैं, कथादेश, दिसम्बर 2006 पृ. 65
6. वही
7. लोक बाबू : बोधिसत्व भी नहीं आये, कथादेश, मार्च 2007 पृ. 49
8. वही
9. विलास गुप्ते : सस्ते आदमी, कथादेश, जनवरी 2004 पृ. 31

# सामाजिक परिप्रेक्ष्यता में अस्पृश्यता की अवधारणा

विजेता

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



www.shodhshree.com

## शोध सारांश

आज के युग में सामाजिक परिदृश्य में देखे तो स्वतंत्रता के पश्चात् भी जाति प्रथा, छुआछूत, भेदभाव जैसी कुरीतियां हमें निम्न वर्ग के प्रति देखी जा सकती है। ऐसा क्यों ? अब तो सभी वर्ग स्वतंत्र एवं सक्षम है। समय के साथ हम लोगों का नजरिया क्यों नहीं बदल रहा है। इस शोध पत्र के माध्यम से मैं लोगों के सोये हुए मानस पटल को फिर से चिंतन करने की जरूरत है। व्यक्ति एवं समाज को अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए।

**संकेताक्षर :** मानव, शोषण, अधिकार, समाज, जातिवाद, अस्पृश्य, संघर्ष, अभिशाप।

**म**नुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के जीवन में धर्म अथवा राजनीति की अपेक्षा समाज की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम सभी मानव जन इस समाज का हिस्सा है। फलस्वरूप उच्च वर्ग हो या दलित वर्ग हो सभी इस समाज के अंग हैं। फिर भी एक वर्ग जो दलित वर्ग माना जाता है, वही भेदभाव, छुआछूत एवं शोषण का अधिकार क्यों है ? क्यों इसी के साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है ? उसे अन्य वर्ग की भांति समाज में समान स्थान प्राप्त नहीं है। भारतीय समाज में हिन्दू वर्ग में जाति व्यवस्था का बड़ा महत्व है। कर्म आधारित जाति-व्यवस्था को धीरे-धीरे हिन्दू समाज में जन्म आधारित बना दिया और जन्म आधारित होते ही इस वर्ण-व्यवस्था ने वीभत्स रूप धारण कर लिया।

“बाबा साहेब का अस्पृश्यता को लेकर यह कहना था कि-“अस्पृश्यता कोई कानूनी शब्द नहीं है कि उसके द्वारा यह परिभाषित किया न जा सके कि कौन अस्पृश्य है और कौन नहीं है। अस्पृश्यता एक सामाजिक धारणा है, जिसने एक प्रथा का रूप धारण कर लिया है और चूँकि प्रथा का अलग-अलग रूप होता है, अतः वही दशा अस्पृश्यता की है।”<sup>1</sup> परिणाम स्वरूप वर्तमान में भी अछूत एवं निम्न वर्ग के साथ होने वाली दुर्घटना इसका ज्वलत उदाहरण स्वरूप है।

“अस्पृश्यता की कोई कानूनी परिभाषा नहीं है और कोई परिभाषा हो भी नहीं सकती। इसका रक्त से कोई संबंध नहीं है। कतिपय प्रथाओं से पालन और व्यवहार ने तरीकों में अस्पृश्यता परिलक्षित होती है। अस्पृश्य वह व्यक्ति है, जिसके साथ हिन्दू एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करते हैं। अस्पृश्य उन निश्चित प्रथाओं का पालन करते हैं।”<sup>2</sup>

प्रायः हमारे धार्मिक ग्रंथों में चार वर्गों या वर्णों को स्थान प्रदान किया गया है, जो निम्न है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मस्तिष्क से हुई है। वैश्य की उत्पत्ति जंघाओं से, क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजाओं से और शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के पांव या पैरों से हुई है। अतः शूद्र की उत्पत्ति पैरों से होने के कारण ही शूद्र को नीचा एवं निम्न माना गया है।

इस जातिगत या अस्पृश्यता की प्रथा ने समाज को असंतुलित बनाकर रख दिया। बस जातिगत भेदभाव के कारण ही निम्न एवं अछूत वर्ग को निम्न से निम्न निकृष्ट माना जाने लगा। निम्न एवं अस्पृश्य को मंदिरों, कुंओं, सामाजिक कार्यक्रमों एवं सार्वजनिक स्थलों के इस्तेमाल या प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। इन्हें प्रायः छूना तो दूर देखने मात्र से ही उच्च वर्ग स्वयं को अपवित्र मानता था। निम्न एवं अस्पृश्य वर्ग के साथ अमानुषिक एवं बुरे से बुरा व्यवहार किया जाता था। एक

समान गलती करने पर भी उच्च वर्ग की अस्पृश्य या विदलित को अधिक दंडित किया जाता था।

वर्ण व्यवस्था का निर्धारण कर्म पर आधारित किया गया था लेकिन यह धीरे-धीरे जन्म आधारित हो गई। उच्च वर्ग द्वारा बनाई गई इस वर्ण व्यवस्था को समाज द्वारा रट लिया गया है। उच्च वर्ग ने तो यह कंठस्थ कर लिया है कि शुद्रादि को कभी भी समाज में समानता एवं सम्मान का स्थान नहीं दिया जाये। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उच्च वर्ग ने सदा ही निम्न अस्पृश्य एवं शूद्रों का शोषण ही किया है।

“जब तक हम भारत में जाति प्रथा विद्यमान है तब तक हिन्दुओं में अंतर्जातीय विवाह और ब्राह्मण लोगों से शायद ही समागम हो सके और यदि हिन्दू पृथ्वी या अन्य क्षेत्रों में भी जाते हैं तो भारतीय जात-पात की समस्या विश्व की समस्या हो जायेगी।”<sup>3</sup> इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विकृत जाति-व्यवस्था ही सामाजिक भिन्नता का कारण है।

बाबा साहब का कहना है कि-“हिन्दुओं का सामाजिक इतिहास न केवल वर्ग-संघर्ष का सामाजिक इतिहास है, बल्कि यह इतनी कट्टरता से लड़ा गया, वर्ग-शूद्र है कि मार्क्सवादी भी उनकी जोड़ के समानांतर दृष्टांत आसानी से प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे।”<sup>4</sup>

समाज में फैला यह वर्ग-संघर्ष बहुत ही वीभत्स रूप धारण कर चुका था। हमारे समाज में जातिवाद की जड़े पूर्णतया फैल चुकी थी। जो कि धीरे-धीरे प्रभावी रूप से हमारे समाज को खोखला बना रही थी। जिस तरह एक व्यक्ति अपने धर्म को लेकर बड़ा ही कट्टर रुख अपनाता है ठीक उसी तरह यह जाति-अस्पृश्यता को मानने वाले लोग भी इसी अंध-परम्परा का कट्टरता से पालन करते हैं।

इसी कट्टरता का पालन करते हुए यह अंध-भक्त या बुद्धि से अपंग वर्ग इतना वीभत्स रूप धारण कर लेता है कि यह संवेदना हीनता की सभी सीमाओं को पार कर देता है और कभी-कभी तो यह सीमाएं इतनी हद पार कर देती है कि स्वयं मानवता भी शर्मसार होने लगती है।

इस प्रश्न का यदि हल ढूँढने का प्रयास करे तो हम पाएंगे की हमारे समाज में फैली जातिवाद की धारणा भी एक गिरते सामाजिक स्तर का प्रमुख कारण है। यह कैसी विडम्बना है कि समाज का एक वर्ग अन्य दूसरे वर्ग की भांति समान नहीं है ?

इस प्रकार गिरते सामाजिक स्तर का प्रमुख कारण हमारे समाज में फैली जाति-व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था है। हम

सभी अस्पृश्यता शब्द से परिचित है। कुछ सामाजिक वर्ग इसका प्रयोग व्यवहारिक जीवन में भी करते हैं। परिणामस्वरूप निम्न एवं अस्पृश्य वर्ग आहत है।

➤ भारतीय समाज में जातीय दम्भ की दो प्रमुख मुद्राएं हैं। एक मुद्रा है जातीय दम्भ की सिंह मुद्रा। जातीय दम्भ की ‘सिंह मुद्रा’ अपनी तनी भौहों से अछूतों को आंतकित करती है। अछूतों के विकास और स्वाभिमान के हर तेवर के लिए इस ‘सिंह मुद्रा’ के पास एक ही विस्मयबोधक अभिव्यक्ति है-“ऐ तेरी ये हिम्मत”। दूसरी जातीय दम्भ की ‘ब्रह्म-मुद्रा’। जातीय दम्भ की ‘ब्रह्म-मुद्रा’ में आतंक नहीं तिरस्कार है और उसकी अभिव्यक्ति की विस्मय भौदकता है-‘छि, छि, छु लिया’।

उपरोक्त पंक्तियों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समाज में जाति प्रथा, छुआछूत वर्ण व्यवस्था एवं अस्पृश्यता अपनी जड़े जमाए हुए हैं। इसकी जड़े इतनी गहराई तक समाई हैं कि वे आज वर्तमान के सामाजिक-धरातल को भी खोखला करती जा रही हैं।

इस कुत्सित जातिवाद एवं अस्पृश्यता की विचारधारा ने तो दलित एवं निम्न वर्ग के सामाजिक जीवन को ही उथल-पुथल कर दिया। अस्पृश्यता के प्रभाव स्वरूप निम्न वर्ग का जीवन इतनी विकृतियों से भर गया है कि ये विकृतियाँ आज भी दूर होने का नाम नहीं ले रही हैं।

➤ बाबा साहब का मानना था कि “यदि किसी अस्पृश्य को क्षति पहुँचाई जाए तो उसका प्रतिशोध लेने वाला है ही नहीं। रक्तपात का कोई भय है ही नहीं। अतः अस्पृश्यों के प्रति हिन्दू कोई भी अन्याय कर सकते हैं और दण्ड से बच निकलते हैं।” यह कैसा मानवीय चरित्र है जो अपने ही समान एक वर्ग के साथ अन्याय पूर्ण व्यवहार करता है। उसे हीन एवं हेय दृष्टि से देखता है।

➤ बाबा साहब ने बताया कि “जो भी अस्पृश्यों के आंदोलन को कुचलने के लिए हिन्दुओं कि अराजकता के बारे में पढ़ता है मुझे विश्वास है कि उसे गहरा धक्का लगेगा। निश्चय कि वह यह सवाल पूछेगा कि किस कारण हिन्दू इस अराजकता में लिप्त होता है। कोई भी यह नहीं कहेगा कि ऐसा प्रश्न स्वाभाविक प्रश्न नहीं होगा, और मामले कि परिस्थितियों को देखते हुए अति संगत प्रश्न यह होगा कि अस्पृश्य यदि साफ वस्त्र पहनता है तो उस पर अत्याचार क्यों किया जाए ? हिन्दू को उससे

क्या आघात पहुँच सकता है ? अस्पृश्य के साथ क्यों छेड़छाड़ की जाए, यदि वह अपने घर पर खपरैल की छत डालता है ? हिन्दू का उससे क्या बिगड़ता है ? अस्पृश्य को क्यों पीड़ा पहुँचाई जाए, यदि वह अपने बच्चों को स्कूल भेजना चाहता है ? उससे हिन्दू की क्या हानि होती है ? अस्पृश्य को क्यों विवश किया जाए कि वह मृत पशुओं को उठाए, सड़ा, गला मांस खाए और घर-घर जाकर अपने भोजन के लिए गिड़गिड़ाए ? हिन्दुओं को क्या घाटा होता है, यदि वह इन कामों को न करे ? हिन्दू को क्यों आपत्ति करनी चाहिए, यदि अस्पृश्य अपना धर्म बदलना चाहता है ? उसके धर्म परिवर्तन से हिन्दू क्यों नाराज हो और बौखलाए ? हिन्दू स्वयं को क्यों अपमानित अनुभव करें, यदि अस्पृश्य अपना सुन्दर एवं सम्माननीय नाम करण करता है ? किसी अस्पृश्य का उत्तम नाम हिन्दू पर प्रतिकूल प्रभाव कैसे डाल सकता है। हिन्दू को क्या आपत्ति करनी चाहिए, यदि कोई अस्पृश्य अपने घर का द्वार मुख्य सड़क की ओर खोलता है ? उससे उसका क्या बनता बिगड़ता है ? हिन्दू को क्यों आपत्ति करनी चाहिए, यदि किन्ही निश्चित दिवसों पर उसके कांनों तक किसी अस्पृश्य की आवाज पहुँचती है ?

- “डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को सबसे बड़ी बाधा बताया है। उन्होंने कहा कि इसकी जड़े भी वर्ण-व्यवस्था में ही निहित हैं। उन्होंने अस्पृश्यता के प्रचलन के लिए मुख्यतः हिन्दू समाज के ब्राह्मणवादी वर्चस्व को उत्तरदायी माना है।”<sup>5</sup>

उससे वह बहरा तो नहीं हो सकता। हिन्दू को क्यों अप्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए, यदि कोई अस्पृश्य कोई काम करता है, प्राधिकार वाला कोई पद प्राप्त कर लेता है, व्यापार करता है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाता है और उसकी गिनती खाते-पीते लोगों में होने लगती है। सभी हिन्दू चाहे सरकारी हो या गैर-सरकारी मिलकर अस्पृश्य का दमन क्यों करते हैं ? सभी जातियां चाहे वे आपस में लड़ती झगड़ती रहे, हिन्दू धर्म की आड़ में एक जुट हो कर क्यों साजिश करती है और अस्पृश्यों को असहाय स्थिति में रखती है।”

इन सबसे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि यह जाति व्यवस्था ही दलित एवं निम्न वर्ग के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी यह जाति व्यवस्था अपने दंश निम्न वर्ग को चुभाती रहती है। रेल गाड़ी में बैठने पर

थोड़ी देर तो सभी सामान्य व्यवहार करते हैं, परन्तु कुछ समय बाद पहला सवाल ‘जाति क्या है ?’ यही पूछा जाता है। निम्न या अछूत बताए जाने पर अचानक एक दीवार सी खड़ी हो जाती है।

हम अक्सर अखबारों पत्र-पत्रिकाओं में इस तरह की घटनाओं के बारे में पढ़ते हैं। फलां-फलां स्थान पर दलित युवक के साथ मारपीट की गई। शादी में उसे घोड़े पर नहीं बैठने दिया गया। हाल ही में अखबार में पढ़ने को मिला-

- “गरबा देख रहे युवक की पीट-पीट कर हत्या”।
- “व्हाट्स-एप पर मूछ वाली फोटो दिखायी तो मारी ब्लैड”।

ये कुछ घटनाएं तो सिर्फ उदाहरण मात्र हैं। इसके अलावा कहीं ना कहीं आज भी दलित एवं निम्न वर्ग के साथ शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं भरा व्यवहार किया जाता है। कुछ ग्रामीण इलाकों में तो चाय पीने के बर्तन भी अलग से दिए जाते हैं। ये घटनाएं निम्न एवं अस्पृश्य वर्ग को आहत करती हैं। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमारा समाज आज भी जातिवादी एवं अस्पृश्यतावादी धारणा की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है।

इस बात को कदापि नहीं नकारा जा सकता है कि समाज या देश की प्रगति के लिए सभी वर्गों की प्रगति या विकास आवश्यक है, क्योंकि देश की प्रगति में निम्न एवं अस्पृश्य वर्ग भी एक मजबूत कड़ी है। अतः उसे साथ ले कर चलना ही देश की प्रगति का प्रमुख आधार स्तम्भ है।

- मैं आज यह पूछना चाहती हूँ कि कब तक सब जात-पात व छुआछूत के नाम पर निम्न एवं अछूत वर्ग को कुओं, नलकुपों आदि के प्रयोग करने से रोका जाता रहेगा ?
- कब हमारे समाज की यह मानसिकता बदलेगी कि निम्न एवं दलित वर्ग भी समाज का अभिन्न अंग है ?
- आखिर कब तक अस्पृश्य वर्ग को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ेगा ?
- कब तक यह प्रगतिशील समाज अस्पृश्य वर्ग के अधिकारों की ओर जाने वाले रास्तों को बन्द रखेगा ?

इस प्रकार जाति प्रथा के कारण आर्थिक कुशलता का विकास नहीं होता। इससे जाति की उन्नति नहीं होती। जाति प्रथा के कारण हिन्दुओं का पतन हुआ है। डॉ. अम्बेडकर मानते हैं कि जाति एक धारणा है, मन की एक

स्थिति है। आज के इस युग में ये भेदभाव नहीं होना चाहिए। शिक्षा का प्रसार-प्रचार हुआ है। इस समय व्यक्ति को अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए। निम्न वर्ग के लोग समाज की नींव हैं। वे ही देश की शक्ति हैं। उनकी उन्नति के बिना राष्ट्रीय उन्नति संभव नहीं है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड 10, पृ. 133
2. वही, पृ. 136
3. वही, खण्ड 1, पृ. 18
4. वही, खण्ड 10, पृ. 95
5. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर : जीवन और विचारधारा (सम्पा. डॉ. पी. एस. भाटी) पृ. 135

# Ecotourism

**Dr. Meena Rao**

Assistant Professor, G.D.P.G. Memorial College, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*Tourism today is considered as one of the worlds largest and most rapidly growing industries. According to the analysis made in this study tourism can be characterized as an activity in search of new and exciting experiences and to take in pleasure. It differs forms the traveling activity of earlier days which was a simple affair free from procedures and formalities. But travel, as it known today may be distinguished as a complex and composite phenomenon, essentially of social nature, which arises from movement of the people and their stay in different destinations. It is inextricably linked with human attitudes, perceptions, demands, motivations, interests, needs and some physical factors and characterized by an amalgam of fragmented trades organizations and activities be composed of the tourist and the three geographical elements known as traveler generating region, tourist route region or transit region and tourist destination region respectively. It consists of three basic components which are well know as attraction, accessibility and accommodation with information bureau, competent guides, facilities for the completion of formalities by the tourist at destinations and natural and man made amenities as ancillary components.*

**Keywords:** *Ecotourism, Growing Industries, Physical Factors, Entertainment, Environmental Impact, WTO.*

**A** great value is being placed on the environmental factors or ecology in the domain of tourism which, in the terminology of tourism has been given a nomenclature as 'Ecotourism'.

In this context it is important to mention that Working and Keller (1995) have suggested four categories of justification for placing a value on file environment in the domain of tourism. These include utilitarian, ecological and aesthetic and the moral utilitarian category is further classified into seven categories, in which the sixth environmental utilitarian justification has been mentioned as 'Ecotourism'.

At its initial stage, Eco-tourism, largely based on the observation of the larger forms of wild life in their natural habitats was deemed as ecotourism, but increasing attention is now being given to the whole array of plants and animals; now tours are organised to see butterflies as well as conducted to observe coral reefs in their habitats. Not only this but under aesthetic and cultural justification it has been asserted that biodiversity is an important quality of landscape beauty. Many organisms such as birds, large land mammals, trees and flowering plants as well as many insects and ocean animals are appreciated for their beauty and attract the interest

of the tourist, hence these have also been reckoned as part of ecotourism.

Now, it is also emphasised upon that thousands of years of paintings and drawings, dating back to cave paintings drawn by stone age people, right up to the modern drawings and paintings related to nature, justify the fundamental aesthetic role of nature and its diversity in human existence. Whole literature from ancient epics to modern novels, films and televisions celebrates the beauty and diversity of life.

The study conducted on the Entertainment preference of people and cited below in tabular form shows people's interest mostly towards those entertainment sources which are directly or indirectly linked with ecosystem or the factors of environment.

**Table No. 1.1**

**Entertainment Preferences of People**

Entertainment Sources	H.I.G.	M.I.G.	L.I.G.
Water Parks	21 %	25%	10%
Amusement Park	12%	23%	19%
Historical Places	18%	14%	40%
Hill Station	16%	10%	6%
Gardens and Lakes	10%	15%	25%
Shopping	28%	18%	05%

M. Romeril in his research study as titled as "Tourism and the Environment: towards a symbolic relationship and published in Journal of Environmental Studies has mentioned that natural assets and attractions, Such as sun, sea and sand have usually been the major reason for a tourism destination's popularity. Natural resources are used to supply tourists with heat, power, food, laundry facilities, sanitation facilities and drinking water, (Romeiri, 1985, 215-18).

J .C. Liu et.al in their research study named "Resident Perception of the Environmental Impact of tourism which is published in "Annals of tourism" have concluded that the protection of the environment is essential for the continued success of any tourism destination (1987,17-37).

In addition to the studies referred to above, there are many studies in the tourism literature which highlight positive benefits of tourism with regard to the protection and preservation of the natural environment which lead us to conclude that for the development of tourism as a collective beneficiary activity there is a need to give proper heed to the concept of 'Ecotourism'.

**Ecotourism Concept and Meaning**

Recent global concern has focused a great deal on 'Ecotourism as man has a deep involvement with nature. The culture which has been developed by men embraces the balance, that combines the discordant fragments of life experiences and the four environmental justifications, namely utilitarian, ecological, aesthetic and moral are used for placing a value on the environment. With regard to the first utitiaian justification it could be said that 'Ecotourism' is the part of the utilitarian an justification while the aesthetic justification asserts that biodiversity is an important quality of landscape beauty, ecological justification assumes that a species has an ecological value unless there is a concrete evidence that it does not. All these three establish the moral justification which justifies the need for conserving forest and biodiversity resources, that is the most important component of the environment (Bodkin et al, 1995).

Keeping in view the justification referred to above and to integrate tourism with nature, of late the new concept of 'ecotourism' has been interposed in the system of tourism. In the year 1983 in Costa Rica a tour operator registered the word 'Ecotourism' for his tour operating business. Soon afterwards the phrase was used

in some public articles in Costa Rica and in the year 1987 Hector Caballos lascurain in an article-which, was published in 'Mexico journal' tried to define ecotourism.

The definition developed by Lascurain was in a shortened form accepted by World Tourism Organisation and UNEP which goes as under.

According to WTO, ecotourism is that type of tourism that involves travelling to relatively undisturbed natural areas with the specific objective of studying, admiring and enjoying the scenery and its wild plants and animals, as well as any existing cultural areas, both of the past or present, in which the conservation of ecosystem and protection of biodiversity is aimed at. (Report of the Workshop on Ecotourism and Environmental friendly tourism January 21st - 24th 1998).

In the past few years many a definitions of ecotourism have been introduced. Some popular writers say that ecotourism is a kind of small scale tourism which is based on the natural and cultural conditions and does not stand the resources which tourism builds on. While be disposed to conservation of the environment and a special type of enjoyment for tourist, Ziffer has said that when a person gets an opportunity of immersing himself or herself in nature in a way most people can not enjoy in their routine and urban existence and eventually acquires consciousness that converts him or her into some body keenly involved in the issues of environmental conservation (Ziffer, 1989). In this definition emphasis is put on the natural area and the activities of the tourists involved. The type of tourist and impact on tourism have not been taken care of.

Taking a step further Black has mentioned that ecotourism is an experience with a focus on the natural and cultural environment, ecologically sustainable activity, an activity with a predominant educative and interpretatively programmed, and an activity that contributes to

the local community groups and projects and to the conservation of the surrounding environment. (1996, 4) It could be observed that the definition given by 'Black' imposes too many conditions which are very difficult to be fulfilled.

Again advanced scholars of the field like E. Boo and F. Burton believe that the concept of ecotourism emerged from the conversion of the trend towards integrating conservation with development and the trend towards the qualitative changes in tourism demands. Both the scholars observe that in modern tourism people are becoming less interested in positive vacations; instead they want to visit new destinations, including remote and exotic places. The scholars mention that ecotourism is the nature based and nature oriented form of alternative tourism which involves environmentally soft activities like hiking, trekking, nature observation and nature photography. It has a basis in liking toward natural areas which in turn can be attributed to change in life style, development of better technologies and trend among people seeking refuse from the high pressure pace of living finding escape in natural environment (E. Boo: Ecotourism. The Potential and Pitfalls, 1990, F. Burton: Can ecotourism objectives be Achieved, 1997). It is worth while to mention here that Boo and Butron have emphasized the conservation of the environment and social - economic development with sustainable efforts of development.

While evaluating event definitions introduced for ecotourism research, Raj Kunwar weens that ecotourism has become a catch word that means many things to many people. He remarks To some it means ecologically sound tourism, to other, it is synonymous with nature tourism, ecotourism is both of these things, but it must go a step further. It must be a force for sustaining natural resources. In the opinion of Raj Kunwar ecotourism is a natural travel that advances conservation and sustainable efforts. It seems

that the development of the concept of ecotourism has led to the feeling which is based on the desire to have ideal tourism. However, Raj Kunwar says. There are almost no indications on what ideal is and how the development of this ideal situation should be organised. (1997, 66).

Taking into account the facts alluded to above Ramesh Raj Kunwar, making a dissolution of the concept of ecotourism, affirms that ecotourism is a form of tourism inspired primarily by the nature of an area including its indigenous culture. In efforts to make clear the concept of ecotourism Ziffer (1989) has mentioned that the ecotourist visits relatively undeveloped areas in the spirit of appreciation, participation and sensitivity. The ecotourist practices a non consumptive use of wild life and natural resources and contributes to the visited area through labour or financial means aimed at directly benefiting the conservation of the site and the economic well being of the local residents. The visit should strengthen the ecotourist's appreciations and dedication to conservation issues in general and the specific needs of the locale. Ecotourism also implies a managed approach by the host country or region which commits itself to establishing and maintaining the sites with the participation of local residents, marketing them appropriately, enforcing regulations and using the proceeds of the enterprise to fund the area's land management as well as community development.

It is to be noted that Ziffer has stressed that the country or region should set themselves the task to produce the sites in way that the local resident can participate and the land management and community development can be funded. But how local people can participated or how the proceeds could be used to reach a balance is not explained. The explanation given by Ziffer also does not show how the development is organised and managed and by whom.

A group of scholars consider ecotourism as a variant of 'Sustainable Tourism'. But opening against this thought some scholars state that sustainability is the state in which human activity does not exceed the carrying capacity of the ecosystem. But it is necessary to keep in the mind that sustainability is the quality of system consisting of human beings; it a social construct. As such with an agreement on sustainable policies and management sustainability is possible. In this regard it has been argued that it is best to consider sustainability as the result of interaction between both, the ecosystem and collective decision making. Therefore sustainability should be regarded as the mediating term which bridges the between the development and environment preservation. Hence 'Ecotourism' directly can not be said as the variant of sustainable tourism.

Taking into account the afore mentioned definitions of ecotourism and the observations made by different scholars, it could be affirmed that ecotourism is a concept which speaks of the consideration of environment in tourism system. It is to be kept in the mind that, in its actualities tourism is an activity based on environment. A component incomplete of ecosystem? Hence ecosystem, instinctively is an important consideration in respect of the development of tourism. Secondly, a discerning observer of the world tourism scene Woal sensed a certain change that is gradually taking place in the order of preferences of the average international as well as domestic tourist. Heritage monuments, which traditionally used to attract maximum number of tourists have yielded place to locations which afford opportunities for leisure in an atmosphere of natural beauty and novelty of tourist experiences. Both these facts have yielded to the development of the concept of environmentally responsible tourism which has been expressed well in the phrase 'Ecotourism' that advocates rational management of tourism in an approach that may contribute to the protection and

preservation of the natural and cultural environment. It aims at margin of tourism with the ecosystem natural as well as Social and Should put back into the system, in terms of quantity as well as quality, as much if not more as it takes out of it. These values are well revealed in the definition of 'Ecotourism' introduced by Canadian Environmental Advisory Council (CEAC) and adduced by P.Wight in one of his articles namely 'Sustainable Ecotourism'. The definition runs as under:

'Ecotourism is an enlightening natural travel experience that contributes to the conservation of the ecosystem while respecting the integrity of the host community.' (Tourism Recreational Research Vol. 20, No.1,1993; P.6) In this definition all justifications be spoken of in the earlier pages and the values i.e. the moral justification and resource-based perspective have been insisted on implying a balance of benefits among the resources, the tourism industry, the local community and the visitors.

Thus ecotoursim seems to be an excellent form of tourism which has been well explained by (B. Farell and D. Runyas 1991, P.27). Both the scholars believe that cultural ecology concerns human beings and their environment. The relationship of tourists communities, managers, developers and policy makers to each others and especially to their environment is the substance of ecological tourism and certainly, with sustainable development. The attributes of ecological and social-cultural integrity responsibility are qualities which may pertain to ecotourism as a product.

## **Conclusion**

The research study lets out that tourism has been classified into different forms out of which

'ecotourism' stands as an important category, which till now has not been well attended to in India. The reason that springs up for this was India's late interest in the concept of modern tourism.

However, travelling in ancient and mediaeval periods in India was in vogue but was not an activity of pleasure as is the case now. It was taken up mostly for pilgrimage and business purposes. An interesting feature that cropped up in the study is that in ancient times while travelling in passport was necessary and guides, as are known today, also existed. In mediaeval times traveling in India was accelerated because of the intrusion of foreign elements like the Turks and the Mughals and later on the Europeans.

## **References**

1. Arora, Mohan P; *Ecology, Himalaya Publishing House Delhi 2001.*
2. Aronson, Lars, *Sustainable Tourism System, Channel, View Publication, 1994.*
3. Bhatt, R.N; *Tourism And Environment, A quest for sustainability Indus Publishing Company, New Delhi 2000.*
4. Bhatia, A.R; *Tourism Management and Marketing Sterling Publishers, Pvt Ltd, 1997.*
5. Bhardwaj, D.S.et.al; *Domestic Tourism In India, Indus Publishing Company New Delhi 1998.*
6. Black, R; *Ecotourism What Does It Really Mean, Ranger, Vol.34; 1996.*
7. Menon, K.M; *Tourism Management In India Print Wall, Publishers Distributors, Jaipur 1999.*
8. Subrahmanyam, N.S.et.al; *Ecology, Narosa Publishing House, New Delhi 2000.*

## Purdah : References in Literature

**Dr. Shobha Singh**

Assistant Professor, S.R.K.P. Govt. College, Kishangarh



shodhshree@gmail.com

### **Abstract**

*Purdah means seclusion of women in separate building or covering their faces when going out or appearing in front of men. In the royal families veiling of face came into practice with the ideal of social prestige which introduced seclusion within royal families. During vedic, epic period there were no direct example of purdah. Purdah system became more prevalent in hindu women in north India probably after coming of turks and afghans. However, in poorer section of society women did not veil their faces because to earn livelihood they require to work with men and other male relatives.*

**Keywords:** *Purdah, Women, Veda, Epics, Arthasastra, Bhasa, Nagananda, Mahaviracharita.*

**K**.M. Ashraf defines Purdah as a curtain or something to screen off an object or person.<sup>1</sup> If we use term in context of women it signifies seclusion in a separate building or covering the face when appearing before men or going out in public. Purdah falls into two interwoven categories. On one side it is the requirement for women to cover their bodies and conceal their form. The other side of purdah is the physical segregation of the sexes. It involves the isolation of male and female. At home a private area such as zenana or harem is created where men are not allowed. We do not find any reference to the seclusion of women in the vedic period.

Rigveda I, 167, 3 does not contain any reference to the Purdah system. The girls were often educated along with boys. Women took part in public activities and were given complete freedom in family matters; treated as “ardhanganis”. This could be possible because of the status enjoyed by women during that period. There are also references of love marriages that took place during vedic period and also youths could approach their sweethearts to win their love and they go together to see shows and sports.

It is stated in the vedic marriage hymn<sup>2</sup> that at the end of the marriage ritual the bride should be shown to all the assembled guests. During vedic times ladies took part in social and public gatherings and welcomed by society.<sup>3</sup> In Rigveda the conception of the duality-male and female of divinity found. Every god was associated with his Shakti or female principle; the god was energy, the goddess the form through which alone it could pour itself out and find expression; “the female principle went forth throughout the universe as the abiding force of the creator in the world.”<sup>4</sup>

Vedic goddess Indrani exclaimed that she is the victorious one; may her husband recognize her strength, O! gods it is she who made the sacrifice from which the great and glorious Indra derived all strength. Women were free to take part in every aspect of mental and spiritual life. Women took part with men in

the performance of all religious ceremonies. Women in vedic times had the right of offering the great horse sacrifice on their own initiative and in their own name. The earliest sages of India declared that the men will be perfect only when he consists of his wife, himself and his son. The existence of any seclusion of women is not found in any hymn. There are references of ladies to go out to court of law to establish their claims of inheritance during C. 500 B.C. in Nirukta.

During the Epic period there were no direct example of practice of veiling. A regret is expressed for Sita in the Ramayana that a lady who had so far not been seen even by the spirits of the sky, now become the object of public gaze, when she went forest with her husband. But other data in the Epics are against this practice. Kausalya, Kaikeyi and Sumitra move in public without purdah during their visit to Chitrakoot to induce Rama to return to Ayodhya. Draupadi was also not wearing purdah in the gambling hall neither Kunti nor Gandhari is seen to be observing it.

Some women were referred as aniskasini i.e. not going out of their homes in Arthasastra of Kautilya.<sup>5</sup> We find the references of avarodha, antahpura and suddanta in the works of Kalidasa. In Abhijanasakuntala<sup>6</sup> when Sakuntala is taken to the court of Dusyanta, she is described as wearing a veil. But she was not wearing any veil in Kanva's ashrama when Dusyanta fell in love with her at first sight. If she was wearing a veil, this would not have been possible. This shows that Purdah custom was prevalent only among royalty or the aristocracy and was then adopted by others.

Purdah makes its appearance in some dramas of Bhasa (C.200 A.D.). In svapanavasvadata padmavati does not observe any purdah during her maidenhood but after her marriage she dislikes receiving of the ambassador from Ujjayini by her husband in her presence. But the king responds that queen can observe purdah in other person's presence.

The country of Thaneshwar was defined by Bana as "where bees drawn by the fragrance of the breaths of the ladies as a charming veil for their faces and the veil actually worn by them became a mere redundancy worn because it was the practice of high born ladies to wear one. The verses from Nagananda of Harsha (625 A.D.) shows that veiling is expected from the girls after their marriage."

**विदूषक : भो व्यस्क कन्यका खल्वेषा तत्किं न प्रेक्षावहे ।**

**राजा : को दोषः । निर्दोषदर्शना हि कन्यकाः ।।**

It is stated in Mahaviracharit of Bhavabhuti (C. 750 A.D.) that Rama advised Sita to put on a veil to pay respect to Parasurama when she was about to approach him. Yuan chuang has given an intimate picture of the hindu society of 7<sup>th</sup> century A.D. but not mentioned purdah anywhere. According to him the widowed sister of Harsha, Rajyasri<sup>7</sup> used to come out without a veil in her brother's court. Abu Zaid (early 10<sup>th</sup> century A.D.) has also noted that queens appeared in public without any purdah in most of the courts in India. Even in Kathasaritsagar which was written in late 11<sup>th</sup> century A.D., there are hardly any traces of the purdah.

The basic requirement of veiling the face can be traced by the ideal of social prestige which introduced seclusion amongst royal families. There is however, no evidence to prove that a large section of royal families follow this custom during the Hindu period. Some women covered their faces from elders-in-law as a mark of respect. Women of higher section were go out either in covered palanquins or with covered faces so that other person cannot see them. Anthropologist Patricia Jeffrey says that a social ideal recommending women to remain in seclusion to mark their complete loyalty towards their husband already existed.

This system was not found in the women of poorer section because to earn bread for the family they require to work and help their elders-in-law and relatives.

So while working with them at the same place it was difficult to keep themselves veiled. Samkhyatattva-Kaumudi<sup>9</sup> of Vachaspati Misra shows that it was more prevalent in Brahmana and Ksatriya women but not so much in vaisya and was almost absent among the sudras.

The general adoption of the purdah system became in Hindu women in north India probably only after coming of Turks and Afghans. According to Bimla Sen adoption of this custom was the additional protection it offered to the women, and there is some evidence that women themselves welcomed the custom at the time.<sup>10</sup> Chachnama describes how Ladi, the wife of Dahir uncovered her face and said, I am Ladi the wife of Dahir; at one more place Janki, the daughter of Dahir is described as unveiling herself in front of the Khalifa for the purpose of communication.<sup>11</sup> B.N. Sharma's<sup>12</sup> view is that purdah before the Muslim rule in India could have been partial. Purdah system became fairly well grounded in northern India by 1200 A.D with the advent of Muslims culture. It was accepted by Hindu society partly in imitation of the manners of the conquerors and partly as an additional protection for the women folk. In his well-known book 'Medieval India' Satishchandra writes that "the growth of purdah has been attributed to the fear of the Hindu women being captured by the invaders. In an age of violence, women were liable to be treated as prizes of war. Perhaps the most important factor for the growth of purdah was social-it became a symbol of the higher classes in society and all those who wanted to be considered respectable tried to copy it. Also, religious justification was found for it."

Nandita Prasad Sahai who teaches gender history of medieval India in J.N.U. observes that there is separate quarters for women called the jinani deorhi in medieval Chittorgarh fort.

This indicates that patriarchal values had already emerged in pre-medieval times. And, that a family's honour had already come to reside in the bodies of their women. Gradually this seclusion combined among higher classes and part of the feminine code of modesty.

### References

1. Saroj Gulati, *Women and Society in North India in the 11<sup>th</sup> and 12<sup>th</sup> centuries*, P.212
2. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।  
सौभाग्यमस्यै दात्वायाधास्तं वि परेतन ॥ Rigveda, X, 85, 33
3. जुष्टा नरेषु समनेषु वल्युः ।Atharva Veda II, 36, 1
4. Kegal paul, *Purdah: The status of Indian women from ancient times to the twentieth century*, p. 17
5. *The Arthasastra* 2, 23, 11, 3.1.7
6. G.R. Devadhara (translated), *Abhijnana Sakuntalam of Kalidas*, V, P.144
7. E.B. Cowell (Trans.) & F.W. Thomas, *Bana-Harsacarita*, Ch. III, 109, p. 83
8. Elliot and Dowson, I, P.11
9. G.N. Jha (edt. by), *Samkhya-tattva kaumadi*, P. 7 lines 7-9, P. 74 line
10. Bimla Sen, *Role of Women in Indian Society*, Better Books, Panchkula, 2007, pp. 202-203.
11. H. M. Elliot and John Dowson, *The History of India as Told by its Own Historians-The Muhammadan Period*, Vol. I, Low Price Publication, Delhi, 2008, pp.210-211.
12. B.N. Sharma, *Social Life in Northern India*, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1966., p.25.

# Advertising is a Fruitful Investment

**Bheeni Kashyap**

Assistant Professor, Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*Advertising is the basis of every successful business at each level in today's era. Because in present time large pool of resources are available to deliver products advertisement direct in the hands of customer. But due to large number of resources competition level is very high. Advertising is most productive activity rather than a wasteful activity as assumed by the companies. It plays dominating role in present commercial world. It provides valuable information concerning products and services in an economical manner, communicates client worth, builds complete awareness and creates demand. The present study aims to provide an understanding of the advertising's impact on companies' performance, employment generation and social values.*

**Keywords:** *Advertisement, Commercial, Economic, Social, Brand Loyalty, Market Share.*

**T**he focus of every company is on the customer. The aim of marketing is to determine the needs and wants of the customer and satisfy them. Acquiring customers, retaining them and catering to demand are supreme for the organizations. In today's market where competition is high, companies have to compete not only against their local competitors, but also against global competitors. In such an environment, the organizations want to be clearly heard by the consumers. No matter how successful and useful the product is, it cannot sell itself. Therefore, the marketing communication efforts become one of the most important instruments in the competition. Organizations either engage in advertising or in some other form of sales effort.

Advertising is a key to every business which they use to influence the individual. It is a non-personal communication and indirect method of promotion through which written, oral or visual message can be transmitted to the public or consumers. In today's world, advertisement uses every possible media to deliver its message to consumers i.e. television, print media (newspapers, magazines, journals, etc), radio, internet, hoardings, posters, clothes, events, sounds, celebrities etc. It connects and able to communicate with potential and present customers, therefore it is widely used by many companies. Advertisement helps in spreading the information about the product or service. It tells about the new products or gives reminder of existing products and cover large population at a particular point of time. In competitive era, every company has to advertise to settle their brand name in the consumer's mind. It is a best tool for facing competition.

Product and its quality are important and at the same time effective advertising is also important. Advertising differentiate the product or service from its competitor. It seeks the attention of viewers or listeners and influences them to buy it.

Advertising helps in product life cycle (PLC). PLC has 4 stages: introduction stage, when product enters in the market for the first time. Nobody is aware about the product. Growth stage, when product achieve considerable and widespread approval in market. Maturity stage, when product becomes popular in the market. Everyone knows about the product. Decline stage, when product loses its distinctiveness and later on escape from the market. It is the last stage of the PLC.

When Flipkart started its business its first television ad was aimed at launching with its core strength - selling books and make people aware about its service of online buying ( at the click of the mouse ) which was simple and easy. When it enters the growth stage, to survive in competitive market and to promote buying. It advertised its 'best offers' and introduce the 'cash-on-delivery' method because Indian consumers were not acquaint with online payment methods. Today, this company is in maturity stage so now they want to retain the customers. Therefore, the new ad has arrived with a tag line "Flipkart Matlab Bilkul Pakka" which means that the company sells only genuine products. Through this, we come to know that to introduce the product, to improve brand image, to increase market share, to enhance brand loyalty and to survive in competitive market company has to advertise its product or service at every stage of its life cycle whether it is introduction, growth, maturity or decline stage. At decline stage, reminder advertising is required because sales drop at this stage. Importance of advertising can be expressed in these 3 points:

### **Commercial Aspect**

The basic and foremost aim of advertising is to boost the sales of the product by attracting potential consumers. Advertising creates certain public attitude towards the product. Firstly, it persuades the reader or viewer on the usefulness of the product. And secondly, it emphasis that only this product can satisfy and

fulfill their wants. Advertising not only attract new customers but also reminds and maintain old customers. It directly penetrates into the mind of consumers.

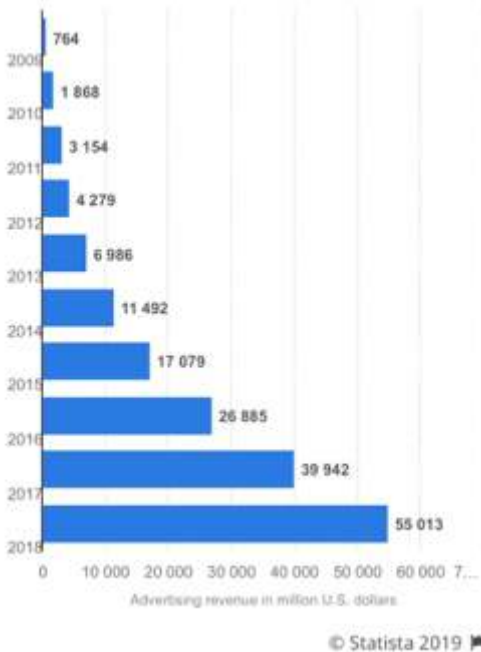
The role of advertising on the sales and revenue of the product is very important because consumer's decisions as what to buy is motivated by what has been seen, heard or used. Its best example is a new advertisement of Coco-Cola for its 'Share a Coke' campaign which will soon arrive to Indian shores. This campaign will replace the brand name with words like "Ma", "Papa", "Bhai", "Didi" on one side of the label. Coco-Cola will use emotional advertising practice. This is because for the Indians "family is on priority".

This campaign was originally launched in 2011 in Australia with most popular people's names of the country printed on the label. The idea of advertising was to reach out to a new target audience. According to coco-cola report, 50% of Australian teens and young adults has not tasted Coco-Cola until the launch of this campaign. This campaign increased the sales volume of Coco-Cola in Australia at that time.

After this it moved to 70 more countries like U.S., U.K., South Africa with name of sports team, countries, etc. Now, it will enter in India and will definitely capture the Indian market and sales of coco-cola will increase. Indians will purchase these bottles on every occasion whether Birthday, Raksha-Bhandhan, Mother's Day, Father's Day, Sibling day, etc. according to the relation printed on the bottle.

Facebook's major portion of revenue is generated through advertising. Today's, generation is spending most of their time on Facebook so some companies have adopted social media (Facebook) as a new advertising media to display their products rather than newspaper, TV, radio etc. Online advertising is best method of promotion. Facebook is giving a path to other companies to advertise its products digitally and over the globe.

## Facebook's Advertising Revenue from 2009 - 2018



**Source:** www.statista.com

Companies are generating revenue by one way or the other way. As Coca-Cola is earning through their product's advertisement and at the same time Facebook is also earning by advertising other brands. Facebook's main aim is not to promote products but slowly and slowly it has entered in the market of promotion or advertising media. And now maximum revenue of Facebook comes from advertising. It is same for the Google whose basic purpose was to search the information. Now it has also provided a platform for advertising to various companies. Facebook is second to Google in revenue generation by digital and mobile ads.

### Economic Aspects

The advertising industry includes people that advertise, agencies that create the advertisement, media that carries the advertisement and other people like copy editors, creative heads, visualizers, researchers and designers who carry it to the customers.

Approximately, 6 million total jobs are supported by advertising in Europe. Out of which 16% of jobs are those in which people are employed directly in production of advertisement. And, 10% jobs are related to media and online business that are funded by the advertisement including journalists, content producers and people working in television.

Without advertisement, funding for all kinds of media would be reduced. This will make TV-subscriptions more expensive, reduce the sales of newspaper and magazines, and radio station would lack the ability to provide news and entertainment throughout the day. In addition, professional sports and cultural events would also search financial support from another sources.

Advertising also plays a significant role in the business cycle. As the economy shifts between periods of growth and recession, advertising shifts its focus. During growth or boom period, every company has to advertise its products to survive in the market. Whereas during recession advertisement focus on the price of a product. Companies usually reduce their advertising budgets. Advertising in a recession is actually a smart move for the business in present and in future. If some companies do not advertise during recession, it is an opportunity for its competitor to grab the market and increase its market share.

If big brands reduce their expenditure on ads, small business get the chance to communicate and display its product to the market. This will help to increase sales of small business. Television, radio stations, websites, magazines all these media will be interested in dealing with small business and give them more exposure and ad space on their channels.

Types of media that the public takes for granted would be extremely expensive to them or would simply be out of business without the revenues advertising is providing to them. The demand

created by advertising helps the economy to expand.

Advertising also supports the art. Advertisers need music that calls attention to the brand. Musical artists meet them and compose songs for them that they can use in their ads. They visit these agencies because they know that companies will spend huge amount of money to buy them like jingles.

### **Social Aspects**

Advertising performs the social functions. It put great impact on the life of the people. Public awareness advertisement has proven to be an effective way to increase AIDS awareness, promote energy saving, reduce road deaths by encouraging the use of seat belts, making aware about consumer courts, etc. It makes the people happier, healthier and better citizens. It helps to reduce the diseases and overcome ignorance. It makes inventions popular and universal.

Like Swachh Bharat Abhiyan which was launched on 2 October 2014. The Government was supported by several celebrities in this mission with an aim to achieve an "Open-Defecation Free" India by 2 October 2019. This campaign was followed by some ads which promoted cleanliness and force people to use toilets.

Mr. Amitabh Bachchan was seen in an ad where he was speaking to a group of people to encourage them to convert waste into compost. Its tagline was "Compost Banao, Compost Apnao". The Government is hoping that this initiative will frequently reduce the amount of waste which is currently growing to the landfill sites and causing health hazards. In other ad, Mr. Bachchan with a young boy spoke about how even a child is aware of this issue (Defecation in open) and the simple solution that is available to everyone. Mr. Bachchan and Anushka Sharma are seen in an ad whose tagline is "Darwaza Band" to encourage people to "close the door" on diseases by simply closing the toilet door while defecating.

The objective of this Bachchan series of ads is to make rural India re-evaluate their current mode of defecation and use toilet. It also encourages change in the behavior of people who have toilets but are not using them. The focus of this campaign is to change their habits. Vidhya Balan's ad "Shauchalaya Banao" is also a motivator to make toilets in every house. Swachh Bharat Abhiyan is actively being promoted across social media platforms and even television for maximum reach. In 2.5 years, approximately more than 3.5 crores toilets have been built. 1.70 lakhs villages and 3 states have been declared open defecation free. And, their numbers are increasing. Some of the big production houses have also contribute in building awareness around a clean India. They make aware about cleaning our country or how we can live healthy and make our country disease free. While promoting their products they help government by delivering social message to public. Some of these are:

**SURF EXCEL's** - 'Daag Ache Hai' has encouraged people to keep India clean. It featured kids who pick up garbage in their area to shame people who threw them.

**HUL's** - "Haath, Munh aur Bum, Bimari Hogi Kum", shows that to prevent from illness we should adopt 3 good habits of washing our hands with soap, drinking purified water and using clean toilets.

**GHARI DETERGENT's** - Swachh Bharat Mission. The ad shows a group of people cleaning their office, students and teachers cleaning roads, train platforms, bus stations and do not worry about getting their clothes dirty because this detergent ensures that they will be cleaned well.

These all ad films help our country to be clean and better place to live. These advertisement market a social concept of importance to the general public. Traditional advertising is now converted into social advertising i.e. social change or social benefit should be promoted

with products and services. Like “JaagoGrahak Jaago”, which make people aware about the consumer's rights.

**Tata Tea's** – “Jaago Re”. This ad Series attracted all the Indians. Firstly, its initiative was to push youth/people towards right to vote. Then, it was against corruption and bribery. Then, to follow traffic rules and so on.

Idea Cellular has also contributed in the public awareness and social changes by its various ads – “Championing a world without caste”, “Education for All”, “Walk when you talk”, “Use mobile, save paper”. They cover the important issues such as caste war, education, health, environment respectively.

“Tobacco is Injurious to Health”, “Smoking Kills” – these ads are telecasted before starting of every movie. They help in creating tobacco-free society. They promote individuals to reduce the use of cigarettes and tobacco products. They focus on the public health.

Today, the advertisements whether sponsored by the companies or by the Government they all are delivering social messages to build public awareness or to provide social benefit to the people.

### **Conclusion**

Brand life cycle also relies upon the advertising. A new brand may discover advertising a very important function to target potential buyers. At this stage, brand recognition is vital and advertising is solely to build it when there are new products or services to offer. On the other hand, a mature brand may approach its consumers through advertising or try to uplift

its sales from declining. Advertisement serve commercial, economic and social aspects of the nation. Advertising helps the companies to sale their goods and services. With this it also helps in countries economic development and provide information about the social issues. Advertising supports the core values that shape any nation: free speech, competition, and democracy. Advertising is very effective, informing about products and services and it plays a favorable role in the progress of the economy. Advertising creates new demand and stimulates existing demand. It contributes to the improvement of quality and new product development and it shapes the competition and ultimately increase the production and leads to higher sales. As a result, there would be an increase in employment in order to satisfy the demand, an increase in productivity and ultimately the cycle would be completed with the customers spending more.

### **References**

1. Kothari, Milind(2016-17), *Principles of Marketing*, Jaipur-New Delhi, RBD Publishing House, PP 245-276
2. Akyuz, Aysen and Ercilasun, Mustafa(2014), “The Role of Advertising during Recession” *International Conference on Eurasian Economies*
3. Backman Jules(1968), “Is Advertising Wasteful” *Journal of Marketing*, Vol.32, pp. 2-8
4. [www.coco-colajourney.com.au](http://www.coco-colajourney.com.au)
5. [Saylor.org.github.io](http://Saylor.org.github.io) – “Economic Effects of Advertising”
6. [Wfanet.org](http://Wfanet.org) – “The Value of Advertising”
7. [www.statista.com](http://www.statista.com)

# Concept of New Historicism: A Study

**Dr. Vivek**

Assistant Professor, Jai Narian Vyas University, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*The objective of this paper is to make people understand the importance of a new theory: "New Historicism". In this paper I have tried to clear the difference between New Historicism and Old Historicism. This theory which is very new has two phases; one phase was in America and the other held in Britain. These phases are also called Cultural Materialism and New Historicism, respectively. I have also tried to make this theory familiar with certain books by the renowned writers. My aim is to make this theory simple and easy to understand to the new learners of this very useful theory, which is a very renowned in the world.*

**Keywords:** *New Historicism, Old Historicism, Cultural Materialism, Literary or Non-Literary Texts, co-text, background, Foreground.*

**N**ew Historicism is a new term in the literary studies. This approach is also known with the name 'historical method'. In simple term historical method is interested in asserting the transcendent or autonomous aesthetic value of literary texts, but to use Marxist terminology, in researching the contexts of their production, consumption and status. New Historicism opposes the old Leavisite preoccupation with moral values. The New Historicism questions the way that the literary canons in schools and universities have been arrived at especially through exclusion and suppression.

The major works on New Historicism are done in USA. In the Renaissance period major research is done by Stephen Greenblatt and in Romantic Period, its Jerome Mc Gann and Marjorie Levinson. In Britain, this work has done by Marilyn Butler in Romantic Period. The New Historicists' tend to question the labels and titles and are constantly refining their goals in order to resist philosophical scholars or Marxists who were trying to give a materialistic explanation of literature. New Historicists are constantly interrogating the relationship between history and literature rather than making rigid (firm) assertions. The seminal work on New Historicism is *Rethinking Historicism: critical Readings in Romantic History* (1989), edited by Marjorie Levinson, that includes essays by Marjorie Levinson, Marilyn Butler, Jerome Mc Gann and Paul Hamilton, contains many different ideas. There is also another important work on New Historicism, *The New Historicism* (1989), a collection of essays, mainly by American scholars, edited by H. Aram Veaser.

Greenblatt first used the term 'New Historicism' in his work, *The Power of Forms in the English Renaissance* (1982) to describe the permeability of literature and history. Discussing Queen Elizabeth's hostility towards Shakespeare's play, *Richard II*, Greenblatt argues that literary criticism is always historical in nature. (study.com)

New Historicist recognised Literature as an independent entity, or had viewed literature as a reflection of the world view characteristic of a period. New Historicists see a literary text as within the totality of the institutions, social practice and discourse that constitute the culture of a particular time and place. The literary text interacts as both a product and a producer of cultural energies and codes.

In new historicism there is a famous quote from Louis Montrose which describes New Historicism as 'the textuality of history, the historicity of text' (Beginning Theory , 2012:166). It means history is conceived to be not a set of fixed, objective facts but, like the literature with which it interact a text that itself needs to be interpreted.

According to New Historicists a literary text is an autonomous body of fixed meanings that cohere to form an organic whole in which all conflicts are artistically resolved. New Historicism is an effort to cover over the unresolved conflicts of power, class, gender and diverse social groups that make up the tensions that underlie the surface meanings of a literary text.

Montrose's famous definition of New Historicism is very relevant to quote as he says new historicism is the 'historicity of the text and textuality of history'. We write history in the form of text and the text which we have; we make a text as history. It is like a change of perspective. We read text in the context of history. We read it like a history book. There are many records of history in the textual books. And the text we read, we regard any text as the textuality of history. So it is a vice-versa. In the next historicist text whether it is a literary or non-literary, it is regarded as history. Both literary and non-literary texts are treated in the context of history, as we are reading a history book.

In the New Historicism, texts are read in the context of 'state power', patriarchal grounds,

how powers are maintained etc. So in this context literary or non-literary texts are read or analysed. Though these are not the only bases on which a text is analysed or read. There are so many grounds on which literary or non-literary text are analysed or discussed.

Language is an important medium to show the power relations. The use of language shows where the pinnacle of power exists. Foucault called this 'discursive Practices'. By reading this language you can get the power centre in the society. So close reading of the text gives information about society, history, power etc. We get many things from reading a literary or a non-literary text.

New historicism movement came in America in 1980s. The propounding father of this movement is Greenblatt. His famous books are Renaissance Self-fashioning (1980) and Shakespearean Negotiations (1988), in the field of relation of history with literature. Greenblatt has given an important role in making this idea strong. With his writings, he has tried to show a fine relation between history and literature. Earlier, with the use of old historicism, writers are seeing this relation with literature, but now he has shown its relation with non-literary texts like essays too.

New historicism envisions and practices a mode of study where the literary text and non literary co-texts are given 'equal weightage'(Beginning Theory , 2012:166).Whereas old historicism considers history as a 'background' of facts to the 'foreground' of literature. While old historicism follows a hierarchical approach by creating a historical framework and placing the literary text within it, New historicism, upholds the Derridean view that there is nothing outside the text, or that everything is available to us in 'textual 'or narrative form, breaks such hierarchies, and follows a parallel reading of literature and history. It looks at history as represented and recorded in literary texts.

New Historicism came in 1980s with the

publication of Greenblatt's book *Renaissance Self-Fashioning: from More to Shakespeare* (1980). It was new critics who regarded the text as everything. There is nothing beyond the text written by the author. But New Historicists are against this belief, they have the opinion that if we really want to get the text we have to go to the background of the writer and the era/period in which the text is written. According to them, reader cannot understand the text without understanding the time in which the text is written. So it is very essential to know or understand the tradition; culture of that time in which the text is written.

Greenblatt used the term 'Self fashioning' to describe the process of constructing one's identity and public face according to a set of socially acceptable norms and the conscious efforts to imitate a praised model in society. According to Greenblatt, during the Renaissance the upper class practised self fashioning. A set attire and behaviour was created for the noblemen and women, and was represented through portraits. Noblemen were to dress in the finest clothing they could afford, having affine knowledge of art, literature, sports and other noble exercises. The relationship between self fashioning and aesthetic media was a reciprocal one. (en.m.wikipedia.org)

'The Book of Courtier', by Castiglione is one of the first texts that depicted behaviour individuals were expected to adopt in society. (en.m.wikipedia.org)

'Cultural Materialism' is an important term which was first used by Jonathan Dollimore and Alan Sinfield in 1985 as a subtitle of their collection of essays *Political Shakespeare*. Cultural Materialism is seen as a historical background, political area, most important as textual analysis. In the historical background, the work of art becomes timeless. It leaves the boundaries of time. For example the works of

Shakespeare are left with the boundary of time. Textual analysis criticised the traditional approaches where it cannot be ignored.

In cultural materialism, two writers are important: one is Raymond Williams and the second is Foucault. Foucault's concept of discursive practices was based on power centres Whereas Raymond Williams' concept is based on 'structures of feeling'. And this concept is based on 'meanings and values as they are lived and felt'. The result of cultural Materialism is much more optimistic about the possibility of change and sees literature as a source of oppositional values. Cultural Materialism mainly involves the past to tread the present. It reveals the politics of our own society by what we chose to emphasise or suppress the past.

Cultural Materialism can be seen into three main books: *The Shakespeare myth* by Graham Holderness; *Alternative Shakespeare*, by John Drakakis, and *That Shakespeare Rag* by Terence Hawkes. Title *That Shakespeareian Rag* is taken from T S Eliot's poem, 'The Waste Land'.

This theory of New Historicism is based on the close reading of the text. Through this close reading of the text, we get to know closely about the background of the text. This theory gives us the close understanding of the text as well as the background of the subject matter. So this theory is beneficial to the readers to have a deeper knowledge of the text.

### **References**

- 1 <https://en.m.wikipedia.org/wiki/self-fashioning>
- 2 <https://study.com/>
- 3 Abhram, M. H. *A Glossary of Literary Terms. X ed. CENGAGE Learning, 2012.*
- 4 Barry, Peter. *Beginning Theory. Viva Books, 2012:177. Print.*
- 5 Cudden, J A. *LITERARY TERMS AND LITERARY THEORY. PENGUIN BOOKS, 1998.*
- 6 Drabble, Margaret. *The Oxford Companion to English Literature, Oxford University Press: 2008.*

# Assessment of Socio-economic and Environmental Impact on Watershed Management Programmes. (A case study of Kharli Watershed "Moral Basin" using RS & GIS)

**Dr. Sunit Meel**

Assistant Professor, Government College, Sumerpur

**Dr. Dharmveer Janu**

Assistant Professor, S.P.M. Government College, Bhopalgarh



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*Our rural agrarian economy is solely dependent on the gamble of monsoon, which is erratic in nature and is unevenly distributed. To conserve the water potential & fertile soil the Govt. of India launched variety of desert development & water conservation programmes. Assessment of these programme, we use conventional techniques but the present study, we are using lately techniques like Remote sensing & GIS. Data base & methodology is Remote sensing Data, Secondary data & Image processing tools.*

**Keywords :** Watershed, Basin, Remote Sensing, GIS, USEL.

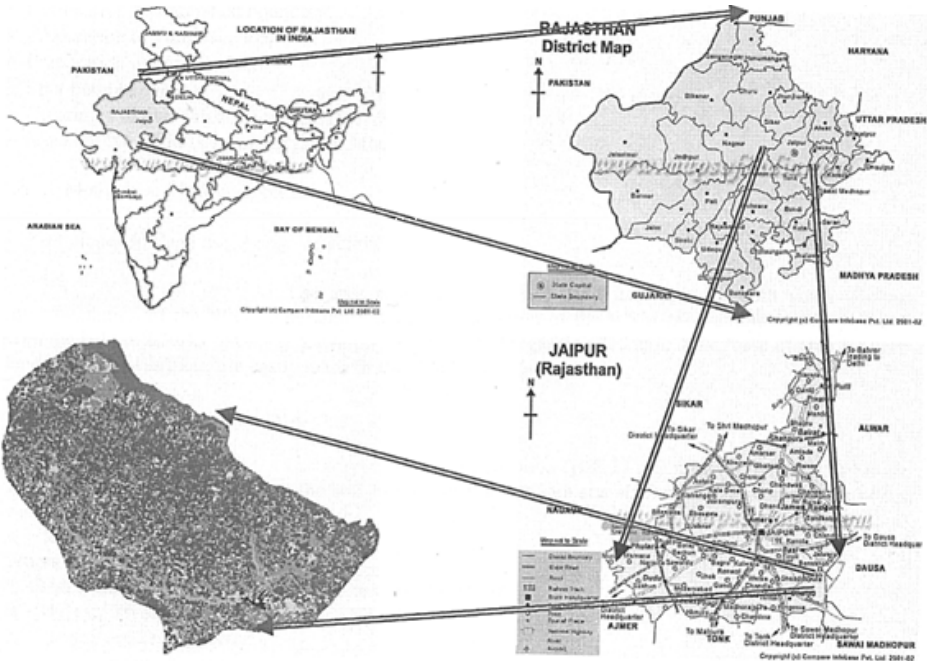
**T**he dearth of usable water is felt nearly everywhere on the planet but the importance of this scarce resource escalates in the case of Indian circumstances where the rural agrarian economy is solely dependent on the gamble of monsoon which is erratic in nature and is unevenly distributed. This ambiguous nature of monsoon is responsible for higher runoff leading to acute soil losses in some areas and dearth of water in other leading to wind erosion. The higher run off also possess the onus of lower ground water recharge in comparison to exploitation providing aegis to the gravity movement of water table, augmenting the dimension of dark zones.

Because of the uneven distribution of monsoon the natives of Thar desert survive in scarcity of water following fungal and thrifty consumption proclivity on one hand and the excessive runoff in sodden areas erode approximately 5300 million tons of fertile soil every year (28 tons/hectare/ year) accounting for annual crop production loss of about 30-35 million tons. The problem of soil erosion is very acute in the developing and under developed nations of Asia, Africa and South America as they account for soil losses of 20 to 40 tons/hectare/years which is very high compared to the soil losses of Europe (10-12 tons/hectare/years) & USA (16 tons/hectare/years). The status of India is also very vulnerable as it accounts for soil losses of 28-31 tons/hectare/year.

To conserve the water potential & fertile soil the Govt. of India launched variety of desert development & water conservation Programmes which include DDP, DPAP & WSM programme. The impact assessment of these Programmes till recently had been done using the conventional techniques. The present study had been an endeavour to study impact assessment of the Watershed Management Programmes, using lately techniques like Remote Sensing & Geographical Information System.

## **Study Area**

The Kharli Watershed (Moral Basin) lies in between 26°38'N to 26°47' N latitudes & 76° 01' E to 76°12' longitudes.



## Data Base & Methodology

### I Remote Sensing Data

- IRS-IC-LISS III digital data (Before implementation of the WSM programme)
- IRS-IC-LISS III digital data (After completion of the WSM programme)

### II Secondary Data

- Topographical maps for geo-referencing the satellite image
- Soil Map to obtain the hydrological soil group
- Watershed boundary map to delineate the watershed catchment
- Meteorological data "Rainfall"
- Ground water table data

### III Image Processing Tools

- ERDAS imagine 8.5 (Earth resource development & assessment system)
- IL WIS 3.1 (Integrated land and water information system developed by ITC, Netherlands)
- MICROSOFT EXLE

### IV Application of GIS for Creation of Data Base

- Delineation of watershed boundary
- Preparation of drainage map
- Preparation of contour Map
- Spot height coverage
- Creating a digital elevation model (DEM)
- Masking the DEM (Digital Elevation Model)

### V Methods & Models Applied

#### Objectives of the study

- To study the impact of Watershed Management practices on watershed hydrology i.e. runoff & soil loss.
- To evaluate the impact of Watershed Management Programme on land use changes & their environmental implication.
- To study the impact of recharge structure and drainage line treatment works on the status of ground water table.

- To assess the level of community participation in the Watershed Management Project in terms of formation of user groups, SHG's (Self Help Groups), meetings of watershed committee, collection of development fund & community contribution for maintenance of assets after completion of the project.
- To evaluate impact of Watershed Management Programme on the status of agricultural development in terms of crop acreage, crop tonnage, use of lately technique like dry farming, use of hybrid seeds, fertilizers, pesticides, agricultural equipments, changes in cropping pattern, crop rotation scheme etc.
- To evaluate the impact of these programme on the status of animal husbandry practices and dairy development.
- To evaluate the success of each activity in arable private lands. The activities include contour vegetation hedge, contour vegetation bundings, horticulture, agro-forestry, gully control etc.
- To appraise the success of each activity in non-arable community lands e.g. pasture development, a forestation, fodder and firewood production, grass production, earthen check dams, anicuts, tanks etc.
- To construe the impact of development works on the awareness, understanding, perception, attitude, skill and practice of the people i.e. beneficiaries.
- To evaluate the overall impact of these Programmes in galvanizing the rural economy & establishment of concept of egalitarianism.

## **Environmental impact assessment**

### **➤ Land use change detection**

When the whole Kharli Watershed is taken into account the area wise land use changes are not prominent but when separate evaluation for implemented & non-implemented watersheds is done we observe that the agricultural area has increased and barren lands has decreased in the implemented watersheds. On the other hand the barren land has increased in the non-implemented watersheds. A broad spectrum of land use changes become tangible from the analysis of the pie diagram stated below.

### **➤ Comparative study of erosion prone areas**

Using USEL (Universal Soil Loss Equation) soil loss for both the years (Prior to implementation & after completion) was estimated & it was observed that there was not much change in the trend of soil loss when the whole watershed is taken into account (Both implemented & non-implemented sites). The estimated soil loss for the year 1998 was 8.94 tons/hac./year & for the year 2001 it was estimated to be 8.74 tons/hac./year. A clear view in regard to changes in soil losses becomes tangible from the analysis of the pie diagram given below

The area under very high & erosion rates was 161 hectares and 203 hectares in 1998 which decreased up to 121 hectares under very high soil erosion probability and 182 hectares under high soil erosion probability in 2001. Contrary to this the area under very high and soil erosion probability in the non-implemented micro watersheds has marginally increased.

### **➤ Comparative study of runoff**

Runoff in the present study for both the years has been estimated using the daily rainfall data of the year 1998 only because of the decreasing trend of rainfall. The yearly rainfall was 1070.7 m during 1998, which went to a low of 201 mm during 2002. If the rainfall data for the year 2001 were used for estimation of runoff, it seems that runoff would have minimized above

the anticipated target which seems to be impossible.

The runoff events for both years are similar, as the land of the whole watershed has not shown drastic changes.

#### ➤ **Comparative study of decrease in water table**

The water table has decreased in the whole study area due to scanty rainfall & over exploitation but the decrease is lesser in the implemented watersheds as compared to non-implemented watershed. The pie diagram represented below present the clear picture about the depletion of water table in the study area.

#### ➤ **Changes in crop acreage & crop tonnage**

The crop acreage (net area sown) & crop tonnage (per hectare productivity) in implemented micro watershed during Kharif season has augmented in 2001-02 compared to 1998-99 and at the same time has shown a decrease for non-implemented micro watersheds. In the villages where watershed management Programmes were implemented an additional area of 594 hectares has been brought under cultivation during 2001-02 which produced 456.50 metric tons additional cereals and pulses, compared to 1998-99 standards.

At the same time the villages devoid of implementation of watershed management Programmes has shows a decrease ie. 232 hectares in the net cultivated area during 2001-02, compared to 1998-99 standards. This decrease in net cultivated area accounted for the food grain losses of 67 metric tonnes. The secondary data in regard to crop acreage ratify the result gained through the GIS analysis of Remote Sensing Data. The land use change detection exercise carried out using Remote Sensing and GIS tools visualizes that the net agricultural area in implemented watersheds has augmented, while it has shown decrease in

the non implemented watersheds. The result gained through both exercises (Land use change detection using RS & GIS and the appraisal of secondary data) are very close to each other.

#### **Conclusion**

The implementation of watershed management programme has brought remarkable change in the land use pattern of the study area. The land under agriculture in the implemented watershed has marginally escalated in the year 2001, in comparison to the non implemented watershed. It has escalated from 795.7 hectares to 1318.4 hectares, achieving an increase of 522.7 hectares. These result gained through the appraisal of satellite imageries have been ratified in the light of secondary data gained from tehsil headquarters. The secondary data exhibit an increase of 594 hectares during the same period. Both the result gained through appraisal of satellite data and secondary data are very close to each other, which provide authenticity to research work

The area under barren lands has decreased in case of implemented watershed, on contrary it has shown an increase in case of non-implemented watersheds. The area under barren lands decreased from 479.2 hectares to 354.6 hectares in case of implemented watershed at the same time it has increased from 792 hectares to 922.6 hectares in case of non implemented watersheds.

Erosion prone areas in implemented watersheds have decreased in comparison to the non implemented watersheds. The area prone to very high loses of soil has decreased from 161 hectares to 121 hectares in case of implemented watersheds at the same time it has increased from 215 hectares to 222 hectares in case of non implemented watersheds.

Ground water table has decreased in both cases (implemented as well as non implemented watersheds) due to scanty rainfall & over exploitation but the rate of decrease in water

level is lesser in case of implemented watersheds compared to non implemented watersheds. The area exhibiting more than 2 meters of depletion per year was 71 hectares in implemented watersheds which is very less compared to 1222 hectares in case of non-implemented watersheds.

Both crop acreage and crop tonnage has increased through in case of the implemented watersheds and at the sametime the crop acreage and crop tonnage has shown decreasing trends in case of non implemented watersheds.

The livestock population has increased throughout the study area but the rate of increase is higher in case of implemented watersheds compared to non implemented watersheds. The marked increase in the no. of cattle flock, provide indications in regard to increased milk production.

Due to drastic decrease in the rainfall the expected results of implementing watersheds management programme could not become tangible.

## **References**

1. *Arnold, J.G., J.R. Williams, R. Srinivasan, and K.W. Kind. 1996. SWAT: Soil and Water Assessment Tool. Temple, TX: USDA-ARS, Grassland, Soil and Water Research Laboratory.*
2. *Hjelmfelt, A.T. 1991. Investigation of curve number procedure. Journal of Hydraulic Engineering 117(6): 725-737.*
3. *Chow, V.T. 1959. Open-channel hydraulics. McGraw-Hill, New York.*
4. *Yoder D.C., G.R. Foster, G.A. Weesies, K.G. Renard, D.K. McCool, and J.B. Lown "Evaluation of the RUSLE Soil Erosion Model"*
5. *Bhuwneshwar Prasad. Sah Kiyoshi Honda & Shunji Murai "Subwatershed Prioritization for Watershed Management using Remote Sensing and GIS" <http://www.gisdevelopment.net/aars/acrs/1997/ts2/ts2002b.shtml>*
6. *Mohamed Rinos M.H., S.P. Aggarwal Ranjith Premalal De Silva "Application of Remote Sensing and GIS on soil erosion assessment at Bata River Basin, India".*

# A study on Bihar Famine crisis in late 19<sup>th</sup> Century: Its Causes, Extent & Nature

**Shailendra Kumar**

Assistant Archivist, National Archives of India, New Delhi



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*The present study has made an attempt to delineate the history of famines in Bihar in the late 19th century. Bihar under the Bengal Governorship witnessed severe famines crisis due to the colonial land revenue system, tax system and the natural calamities contributed to the crisis. Attempt has been made to analyse the colonial state policies and their response to the famine crisis. It has been observed that inspite of availability of food grain in the market but due to high price the poor could not afford to purchase it. In this context B.M. Bhatia defines, "Famines, under modern conditions, has come to signify an abrupt sharp rise in food prices which renders food beyond the reach of the poor who suffer starvation". The food grains were never reached to the famine stricken areas. The purpose of this article is to explore the nature, causes, and extent of the famine crisis along with the colonial state policies in famine crisis of Bihar.*

**Keywords:** Famine Crisis, Colonial state, Hathiya, , Diwani, Colonial Tax system, Zamindars, Bihar.

**T**his paper seeks to explore the famine crisis in 19<sup>th</sup> Century and analyze the nature, causes and the extent of famine crisis that occurred in Bihar. In attempting to do so, the paper examine the contributing factors that leads to the crisis. What is so peculiar about the forms of history writing on the famine history? Why it has been left out in the academic discourse in the context of Bihar famine is an interesting case to be discussed.

## **Glimpse of Geography of Bihar**

Bihar was the part of the Bengal state which covers the area of approximately 2 lakhs sq. kms. It split from Bengal in 1911 and thereafter Bihar and Orissa province came into existence. Physically, Bihar is divided into two broad areas: (i) The Gangetic Plain and (ii) The Southern Hilly Region. The Ganga is spread over both sides of the river and covers about 28,000 square miles or 42 percent of the state's area. The Ganges divides the plains into two unequal divisions, one north and the other south. The north part of the Ganges is absolutely alluvial and flat. The southern mountainous region is located in the south of the contour line of 500 feet. Except some areas, this route is commonly known as Chhotanagpur Plateau. Both parts are different in relation to ground water resources.

## **Climatic conditions**

It would be worth to discuss some of the contributing factors to the famine crisis of Bihar, though the response to the crisis by the colonial state needs to be critically examined. Bihar has two main seasons; most of the rainfall is mainly prolonged summer and short winter (Nov-Feb) due to southwest monsoon (mid June-mid September) and rest occur due to retreating monsoons and western disturbances. Monsoon breaks normally in the eastern parts till first week of June and in the western parts of the state till mid June, contributing more than 80% of the total annual rainfall. Retreating monsoon usually comes back from Bihar in the first week of October which popularly known as *Hathiya Knashtra* across Bihar. Rainfall in *Hathiya Knashtra* is essential. Agricultural production are vehemently dependent on the above mentioned three spells of rain namely Monsoon, *Hathiya* (retreating monsoon as "Hathiya asterism in local parlance, it is known as *Hathiya Knashtra* – like an elephant *Hathi* who put his trunk in his mouth, there are 27 lunar asterism in a year, and subsequently  $2\frac{1}{4}$  in each month. Each asterism is not of equal length. The longest is *Hathiya*, which is 16 lunar days)" and lastly winter rains. Failure or delay in any three ended up in farm distress and its recurrence eventually turned into famine in colonial era. Bihar has the maximum duration of tropical cyclones for maturing the winter paddy and wet the soil for Rabi crops, Rainfall during the winter is due to western disturbances which come all the way from the Mediterranean region. These shallow, widespread temperate cyclones, especially in January-February, bring clouds, rain and cold winds which are very important for the Rabi Corps.

## **Tax regime under East India Company Rule**

How the tax regime operates under the Company rule and after the control of diwani rights, maximization of revenue by exploiting tenant is briefly discussed below:

The British East India Company began the administrative takeover of India in 1764-1765. The Company appointed Diwan or Governor over the area of Bengal after the decline of Mughal Empire. The British entered India as the Administrative rulers and the Tax Collectors of the Mughal Court. The Tax-Collector had the right to obtain as much tax as he could get, since he had bought these right at auction, In turn, the one who was taxed, the registered landholders, called Zamindari, was allowed to extract whatever he could for himself and for the tax collector from the poor peasant who worked the land as a tenant. The Zamindars has complete power over all the land and all its cultivators. Though this looting system, the company left nothing in reserve for the time when the monsoon would fail. In addition, little or no maintenance was allowed for the cultivators' infrastructure, such as the irrigation work.

During the first 80 years of the 19<sup>th</sup> century 18,000,000 of the Indian people was perished due to famine. In one year alone the year when Her Majesty Queen Victoria assumed the title of Empress 5,000,000 of the people of Southern India were starved to death. In the district of Bellary one-fourth of the whole population perished in the famine of 1876-77.

The frequency of Famine showed a disconcerting increase in the Nineteenth Century. In a period of about 90 years, from 1765 when the British East India Company took over the Diwani of Bengal to 1858, the century experienced twelve Famines and four severe scarcities. The frequency of famine showed a still further increase during the first fifty years of the direct rule of India by Britain. Between 1860 and 1908, famine or scarcity prevailed in one of the country or other in twenty out of the total of forty nine years.

Interestingly, the increase in frequency of famine crisis was the change in the nature of famine over the period of time. For instance, inspite of the means of transport improved, the

trade in grain becomes limited, resulting in acute shortage of food supply to the region.

### **Shifting alignment in Land ownership System**

In early times the idea of absolute ownership of land did not exist in India. All classes connected with the land possessed certain rights. The cultivator possessed the right to cultivate the land and enjoyed security of tenure on the condition of payment of more or less definite share of produce to the landlord. In the 18<sup>th</sup> Century in most parts of India, land had no market value. This was mostly due to poor yield from the land and absence of security. The company started the 'search for the landlord' in an attempt to appropriate the Indian to the English land system. There might have been no desire to change the Indian system but ignorance and the assumption that there must be definite ownership of land in a particular individual led Cornwallis to the drastic decision to recognize the zamindar as the owner of land.

Till the year 1790, the old system of annual settlement was continued. In 1790 Cornwallis with the approval of the court of Directors decided to recognize the zamindars as the owners of land subject to the annual payment of land revenue to the state. A ten-year settlement was made with the zamindars in 1790 on the basis of 89% of the rental. In 1793 the decennial settlement was declared permanent and perpetual.

British Famine Policy in India was influenced by the arguments of Adam Smith, as seen by the non-interference of the government with the grain market even in times of famines. Keeping the famine relief as cheap as possible, with minimum cost to the colonial exchequer, was another important factor in determining famine policy. According to Brian Murton, a Professor of Geography of the University of Hawaii, another possible impact on British Policy on Famine in India was the influence of the English Poor Laws of 1834, with the difference being that English

were willing to 'maintain' the poor in England in normal times, whereas Indians would receive subsistence only when entire populations were endangered.

### **Impact on peasant during Famine Crisis**

Famine was a natural calamity before the Industrial and Commercial revolutions as it was not possible during the distress to meet to requirements of food in the effected region by quick supply of food grains from other parts of the country or even from other countries of the world. But during the modern era, development of industry, trade and transport, famine has ceased to be a natural calamity and transformed into a social problem of poverty and death. The natural cause, the failure of rains, cannot adequately account for it. For in a large country like India, local deficiencies and excesses of rainfall is normal, but a general countrywide failure is rare. Normally the insufficiency of produce in one part of compensated by the yield of the other parts and rarely does on overall short fall occur.

In the year of 1873-74 Bihar and some parts of Bengal witnessed one of the severest famines, which occupy a unique position in the annals of Indian Famines. The rains, in 1873, has been not only very late to commence and very early to cease, but had been in quantity below the average in amount to an extraordinary degree and distributed in the most unfortunate manner. The rains, in some parts of the district of Patna though extra ordinary late, were so heavy that very great injury had been done to the early crop called locally the *Bhadoi* by excessive rains. The rains ceased very early and the crucial September-October rains locally known as *Hathia* failed over a large part of Bihar causing wide spread damage to the important winter rice crop which supplied half of the  $\frac{3}{4}$  of the annual food requirement of the people of Bihar. The rains had stopped so prematurely that the winter rice crop was almost lost and the ground was too dry to admit of the Rabi being

sown. Generally 26% of the population of the more distressed tracts and 11% of the less distressed tracts were affected by the famine. The ration of course varied considerably being in many places less than above stated, but in the worst tracts of North Bihar is stood as high as from 50-70%.

During the late 19<sup>th</sup> Century, the immediate causes of famines were the failure of monsoon. Besides, the means of irrigation were under-developed and rainfall played a crucial role in agriculture production. However, the failure need not be absolute but unless the colonial state control the price of the good grain, the high prices may mean wide spread starvation of the poor.

When the distress was at its highest in the month of May, the total areas affected comprised 1300 sq miles with a population of 11,73,785 persons. The affected tracts of Drabhanga comprised in all 1,185 sq. miles or about one-third of the total area of the district. The effects of the draught and consequent scarcity were more actually felt in the district of Darbhanga than elsewhere, as it depends on the winter rice crops. The outturn of which was about 5 annas and the Bhadoi crop covered a comparatively small area. The total affected areas in Bhagalpur and Darbhanga districts comprised 485 sq miles with a total population of 2,83,000.

The net imports of food grains into Bihar from November 1896 to the end of August 1897 was returned at 1,20,000 tons only as against the estimated requirement of 5,50,000 tons. The import of only 1,20,000 tons of food grains not meeting the basic requirement of the food supply. This shows the suffering of people in Bihar the most, which was added with the calamities of the season during the period. The distance of affected districts from the railway and large grain marts and the exhaustion of local stocks had created a serious situation. The government imported into Palamau 1,50,000

tons of Burma rice in June 1897 on its own account for the payment of wages in kind of government relief works and for the distribution of doles of gratuitous relief. So food can be available at all times in the market, but prices are so high that poor people cannot afford it. The growing misery of the village people was linked with augmentation of the burden of debt and the intensification of the poverty of the poorer classes of peasants and village artisans. The two factors together accounts for the increase of landless labourers in the country.

### **Discourse on Famine**

The history of scarcity, famine and hunger is largely unwritten for the period and this paper seeks to navigate the nature & causes of the famine crisis that occurred in Bihar during late 19<sup>th</sup> Century. Many of the scholars studied this phenomenon based on the report available in the Government Department. The topic of famine in India has attracted the attention of nationalist scholars from the late nineteenth century. Plight of famine in society is visible and terrifying and the degrading administration resulted in starvation and eventually death of human life, but unlike wars it offers little scope and challenges cozy and complacent assumptions about the 'normal' process of a society.

For nationalists, besides having an important agreement in the criticism of colonialism, it was a matter that was adopted with great passion. Nationalist argued that during the British regime in India confronted famine frequently, but colonial administrators and analysts refused this claim in justification that under the colonial rule, famine looked more serious and recurring their detailed report and records were duly maintained by Government. Thus, for Blair, India was a country 'without an indigenous history' where 'there are masses of written material, but scattered, desultory and unconnected'. Another author rejected the view

that pre- British famines in India were less severe as 'sheer ignorance', and surmised that in absence of better transportation famine suffering continued since immemorial time'. Thus, many colonial writers asserted that although famines were an inseparable part of India's past, they did not have a history because indigenous chroniclers ignored them.

However, when a systematic history of famines was attempted by officials in the later part of the nineteenth century they encountered a similar lack of 'historical sense' in the accounts of early colonial administrators. Looking for information on the 1803-04 famine, Girdlestone observed that the historians of this period are silent on the subject. As we see Mill and Thornton while documenting the military accounts, it gives thorough details of the military operations in 2<sup>nd</sup> Anglo-Maratha war against Holkar and Scindiah, but it lacks details of famine which occurred simultaneously. In reality the devastation of armies is less than the ruin caused by the famines crisis.

### Conclusion

The Whole debate of famine, causes, extent and nature is focused on how colonial state policies directly affected the indigenous economy and push the Indian economy into servile state. As a result, India remains a mere exporter of raw material and market for England finished product. Thus, India becomes a 'classical economy' of the British colony. It is suffice to argue that inspite of developed means of communication like railways and roads, the required minimum food grains never reach to the poor cultivator which resulted to large scale famine crisis in Bihar. Nevertheless, other natural factors that contribute to the famine crisis could not be ignored but how colonial state response to the crisis cannot be ignored. After the advent of the British rule in India, they exploited the country's natural resources for their own financial benefits. The study of the famine crisis impacting society and culture is

depending on the behavioral crisis of Colonial system of land, tax and the arrangement of major relief. Poor becomes very poorer, they have no food to eat; price are so high of the grains, they were not capable to buy the food grains; few relief was available to the famine affected person. Thus, the India impoverished economic situation was not because of lack natural resources or geographical phenomena but it was a victim of colonial exploitation. Therefore, in later part of the 19<sup>th</sup> century the frequent occurrences of famines are largely manmade.

### References

1. B.M.Bhatia, *Famines in India*, 1967, p.1,2
2. *Bihar peasants life* by George A. Grierson, The Bengal Secretariat Press, 1885, London, p.p.285
3. *Ibid* p.271
4. Article appeared in April 25<sup>th</sup> 2008, issue of "Executive Intelligence Review" Entitled "Then & Now: British Imperial Policy Means Famine" by Paul Glumaz.
5. Article appeared in S.N.Series No.16335 entitled "Notes and exploitation of India by England" by Sunderland's *India and Bondage*, pp-10
6. *Report of the Famine Commission, 1901*, pp-1
7. Dodwell, H.H., *The Cambridge History of India*
8. Dutt, R.C., *Economic History of India*
9. Dutt, R.C., *History of the freedom movement in India*, p.302
10. *Letter from Secretary, Government of Bengal to Secretary, Government of India, Department of Agriculture, Revenue & Commerce N.B. 50T, dated 22 October 1873, vide Famine Proceedings, December 1873.*
11. *Buckland's Bengal under Lieutenant Governor*, Vol.2., p.p. 587
12. *Indian Economy* by R.Dutt and KPM Sundaram, S.Chand & Company; New Delhi; 1974, pp23.
13. *Famine Proceedings (No.11's enclosure) Volume, December 1873*
14. *Letter from Officiating Collector of Darbhanga to Commissioner, Patna Division No. 791G, dated 10 Sep 1892 vide Famine Proceedings (Nos.2-3) Volume January 1893.*

15. *Letter from Officiating Collector of Purnea to Commissioner, Bhagalpur Division No. 1250G, dated 12 Sep 1892 vide Famine Proceedings (Nos.2-3) Volume January 1893.*
16. *Ibid*
17. *Ibid*
18. *Shashi, S.S., Encyclopedia Indica, Anmol Publication, 2004, p.p.569.*
19. *Sanjay Sharma, Famine, Philanthropy, and the Colonial State (North India in the Early Nineteenth Century); Oxford University Press, New Delhi, 2001, p. 2*
20. *For a representative and comprehensive analysis, see Romesh Dutt, The Economic history of India: Vol. 1, Under Early British Rule: vol.- 2, In the Victorian Age 1837-1900; (first Indian edn, with a critical introduction by Prof. D.R.Gadgil, Delhi, 1960; first published London, 1902-4).*
21. *Charles Blair, Indian Famines: Their Historical, Financial and Other Aspects (1874; repr. New Delhi, 1986), p. 3.*
22. *Theodore Morison, The Economic Transition in India (London, 1911). P.105.*
23. *C.E.R.Girdlestone, Report on Past Famines in the North-Western Provinces (Allahabad, 1868).12*
24. *[www.shodhganga.inflibnet.ac.in/introduction/famine](http://www.shodhganga.inflibnet.ac.in/introduction/famine)*



# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018  
Shodhshree@gmail.com

## Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

Address .....

District .....

State .....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date

(Signature)

**Frequency** : Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly)  
i.e. January, April , July & October.

**Mode of Payment** : Subscription fee can be deposit through online Banking.

**Bank Details** : Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur  
SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672,  
MICR Code 302022005  
Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No. ....

Date .....

(For Office Use only)

## DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....  
hereby declared that the paper entitled'.....  
.....'is unpublished original paper which is not sent any where  
for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....  
.....which is  
exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the  
Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the  
address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other  
journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

Residential Address .....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address .....



# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018  
Shodhshree@gmail.com

## Institutional Membership Form

The Editor  
Shodhshree  
Jaipur

Dear Sir

I want to become a member of this Journal for -

1 year

(Rs. 1000/-)

2 years

(Rs. 1800/-)

3 years

(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID .....

Date:

Signature

For Office Use Only

Membership No. \_\_\_\_\_

Date \_\_\_\_\_

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)  
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

**Bank Details** : **Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank,**  
Adarsh Nagar, Jaipur

**SB A/C NO.06722151002965**

IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005



## Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.
3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.
6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.
7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

**Book Review :** For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

**Note :** Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail: [shodhshree@gmail.com](mailto:shodhshree@gmail.com)  
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134**

To,

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

**शोध श्री** (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी

टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,  
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।